SARASWATI
1942 G; K; U;

वर्ष २ ओ३म् अंक १

वेदवाणी

सदा बढ़ते चलो

ओ३म् उप त्वाग्ने ! दिवे दिवे, दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥

ऋक् १. १. ७. ।साम पूर्वार्चिक १. १. ४. ॥

(अग्ने) हे अग्रणी नेता ! (वयं) हम (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) रात और दिनके समय साँझ-सवेरे (धिया) बुद्धि व कर्मसे (नमो भरन्त) नमस्कार को भेंट लाते हुए (त्वा उप एमसि) तेरे समीप आ रहे हैं।

आज ही से अग्रणी हे अग्नि दुःसाहस करूँगा ,
रात दिनकी इन अपरिमित सीढ़ियों पर मैं चढ़ूँगा,
पैर दायाँ मैं दिवस पर रात पर बायाँ धरूँगा,
हर कदम पर मैं सजग रह कर सदा आगे बढ़ूँगा—
जानता हूँ - हैं लुटेरे।
किन्तु यह होते हुए भी "मैं सदा बढ़ता रहूँगा",
क्या हुआ इससेकि मैं इस राहमें गिरता रहूँगा,
क्या हुआ इससे कभी जीता कभी मरता रहूँगा,
नित्य गिर गिर कर उठूँगा, मैं सदा चढ़ता रहूँगा—
प्रति अहो-निशि के सवेरे।
आ रहा हूँ पास तेरे॥

—श्री जगन्नाथ प्रसाद

आश्विन २००६ बि० प्रधान सम्पादक—श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु (अवैतनिक) वार्षिक मूल्य
सितम्बर १९४९ ई० सम्पादक—प्रो० महेश प्रसाद ,, भारतमें ४ रु० आठ आना
दयानन्दाब्द १२५ स०सम्पादक—श्री क० च० 'राकेश' जी ,, विदेश में १० शिलिंग ६)
वेद व सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५० व्यवस्थापक—आनन्द स्वरूप बी० ए० एक प्रति ६ आने
वेदवाणी कार्यालय आदर्श साहित्य मण्डल, जंगमबाड़ी, बनारस !

विषय-सूची

वेदवाणी के नियम

१-पत्र प्रतिमास प्रथम तिथि को प्रकाशित हुआ करता है।

२-वार्षिक मूल्य ४।) हैं जो मनीआर्डर द्वारा अग्रिम भेजना चाहिये।

३-लेख सम्पादक, वेदवाणी के नामसे आने चाहिए।, लेख सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा मौलिक हों। उनको प्रकाशित करना, न करना तथा संशोधित करना सम्पादक के अधीन है। अस्वीकृत लेख पोस्टेज प्राप्त होने पर लौटाये जा सकते हैं। लेखोंमें प्रदर्शित विचारोंके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं।

४-वार्षिक मूल्य, विज्ञापन-सम्बन्धी धन तथा पत्र व्यवस्थापक वेदवाणी, आदर्श-साहित्य-मण्डल, १२ जंगमबाड़ी, बनारस के नाम भेजना चाहिए।

ॐ

वेदवाणी

सं श्रुतेन गमेमहि, मा श्रुतेन विराधिषि ।
हम सदा वेदवाणी से संयुक्त रहें, उससे कभी विमुख न हों

वर्ष २] काशी—आश्विन सं० २००६ वि०, सितम्बर १९४९ ई० [अंक १

हे देव! मेरे देव!

ऋषि:—एकद्यूर्नौधसः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—निचृद् गायत्री । स्वरः—षड्जः ।

ओ३म् हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि ।
उपमं वाजयुः श्रवः ॥

ऋग्—८. ८०. ५

तो फिर हे इन्द्र! तुम अब क्यों बैठे हो? हमारे रथ को सब से आगे, प्रथम स्थान पर कर दो । वाज (बल, ज्ञान) चाहता हुआ ऐश्वर्य तो तुम्हारे पास विद्यमान ही है ॥

कब से मैं तुम को रहा टेर; टुक सोचो कितनी हुई देर ।
अब तो न रहो यों उदासीन, अब तो देखो इस ओर हेर ॥ हे देव, मेरे देव!
कितने मुझ से पहुँचे आगे, कितने जाते आगे भागे ।
पर अब भी तुम होते न सजग, जागो, सोई क़िस्मत जागे ॥ हे देव, मेरे देव!
अब उठो, न जिससे और यहां मैं रहूँ, मुझे ले चलो वहां ।
सब से पहले निज रथ पाऊँ सब से आगे मैं शीघ्र जहां ॥ हे देव, मेरे देव!
तुम शक्तिमान, तुम ज्ञानवान, तुम ऐश्वर्यों की सकल खान ।
भरदो धरदो मुझमें अपनी, सबकी सब जो निधियाँ महान ॥ हे देव, मेरे देव!
मैं जिससे मानव-धर्म पाल, सब तोड़ विश्व-बन्धन कराल ।
बन राम कृष्ण, जगती में मैं, तुम में लय हो जाऊँ कृपाल ॥ हे देव मेरे देव!

—श्री महावीरप्रसाद 'निरीह'

स्वाधीनता-दिवस

माननीय चौधरी गिरधारीलाल जी नशा-निवारण-मंत्री, युक्तप्रान्त

१५ अगस्तकी पुण्यस्मृति हिन्दुस्तानके प्रत्येक नागरिकके स्मृतिपटल पर सदैव अंकित रहेगी। आधी शताब्दी के अनवरत परिश्रम, आन्दोलन एवं संघर्ष के परिणाम स्वरूप ही हम अपने को विदेशी सत्ता के पाश से मुक्त कर सके। इस दिन हमें अपने सिद्धान्तों तथा अपने सम्पादित कार्यकी विवेचना करना है और भविष्यके लिए कार्यक्रम की रूपरेखाका निर्माण करना है।

हमारे देशके समक्ष इस समय अनेकानेक समस्यायें हैं जिनमें से अधिक अन्न उपजाना तथा अन्य दिशाओं में उत्पादन बढ़ाने की योजनाओंको गति देना सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम है। हमारे सामने यह भी प्रश्न है कि हम अपने चरित्र बलको ऊंचा करके सारे देश का नैतिक स्तर ऊंचा करें। मुझे पूरी आशा है कि हमारे हृदयोंमें हमारी स्वतंत्रताकी ३य जन्म तिथि नये जीवनका संचार करके जन समुदाय में सच्ची नागरिकता लावेगी।

माननीय चन्द्रभानु गुप्त, स्वास्थ्य व नागरिक-पूर्ति मन्त्री युक्तप्रान्त

विदेशी सत्ताकी गुलामी से छुटकारा मिले दो वर्ष हुये। राजनैतिक स्वतंत्रता तो हमने प्राप्त करली, लेकिन जब तक हम आर्थिक और सामाजिक गुलामी को नहीं मिटा देते, हमारा काम अधूरा ही रहेगा। आज हमें संकल्प करना चाहिये कि हम अपने देशसे असमानता भूख, नग्नता और बेकारीको दूर करेंगे और राष्ट्र पिता महात्मा गाँधीके बताये हुये रास्ते पर चलकर देशमें समता तथा सुख, समृद्धि की वृद्धि करेंगे।

सहयोग, सद्भाव और निःस्वार्थ सेवासे ही हम अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आशा है कि स्वतंत्र देशका प्रत्येक नागरिक अपने कर्तव्यका पालन करेगा और देशको उसके अन्तिम ध्येय तक पहुँचानेमें सहायक बनेगा।

माननीय केशवदेव मालवीय, विकास-मन्त्री युक्तप्रान्त

स्वतंत्रता की द्वितीय वर्षगाँठ हम सबके लिए हर्षोल्लास एवं आत्मनिरीक्षण का दिन है। आज जब कि हम वर्षगाँठ की खुशी मना रहे हैं और इस बात पर खुश हैं कि हम सब स्वतंत्र हैं और सदैव रहेंगे तो हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि स्वतंत्रता ने हमपर बहुत से उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यों का भार भी डाल रखा है। दुर्भाग्य वश आज हममें अधिक आराम तलबी और कम काम करनेकी प्रवृत्ति पैदा हो गई है जिसका अन्त करनेकी आवश्यकता है।

आज हमारे समाजमें ऐसी त्रुटियां व बुराइयां पाई जाती हैं जिनकी नीवें दासताके कालमें दृढ़ हुई हैं। हमें निर्ममता से काम लेकर उन्हें जड़से उखाड़ कर फेंकना है अन्यथा सम्भव है हम स्वयं नष्ट हो जायँ। हमें अपनी आंखें खुली रखनी हैं और यह देखना है कि हम अपनी शक्तियोंका प्रयोग कैसे कर रहे हैं। हमारे नवयुवकोंको जो शिक्षा प्राप्त हो रही है क्या उससे हमारे उद्देश्यकी प्राप्ति हो रही है? यदि नहीं तो क्या हम लकीर के फकीर नहीं बने हुए हैं? यदि न्याय, शासन, शिक्षा और सरकार संचालनमें आमूल परिवर्तनकी आवश्यकता है तो उसे बदल देनेमें हमें झिझक से काम न लेनाचाहिये। हम नए नए प्रयोगोंको प्रारम्भ करनेमें जितने अधिक खतरे उठानेको उद्यत रहेंगे हमें उतनी ही अधिक सफलता मिलनेकी सम्भावना हो सकती है।

हमें आशा रखनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिये कि हमारे नेता अवसरानुकूल कार्य करेंगे और हमारे नवयुवक एक क्षणके लिए भी अपने उत्तरदायित्व को न भूलेंगे। अच्छा हो यदि हम स्वतंत्रताकी आगामी वर्षगाँठ तक ऐसा कर सकें।

—०—

हमारी स्वतन्त्रता

लेखक—श्री "राकेश" स० सम्पादक

एक सती दुष्टोंके हाथोंसे, एक ऋषि राक्षसोंके उपद्रवोंसे और एक गुलाम ज़ालिम मालिकके अत्याचारोंसे मुक्त होकर जितना आनन्द अनुभव करता है उससे कहीं अधिक आनन्द, हमने हज़ारों वर्षोंकी पराधीनतासे मुक्त होकर अपनी स्वतन्त्रताकी तीसरी जन्म तिथिके, जो १५ अगस्तको आई थी, शुभ अवसरपर अनुभव किया और हर्षपूर्वक वर्षगांठको मनाया। देशका कोना कोना राष्ट्रीय गानसे गूंज उठा। अपना तिरगा झंडा सर्वत्र लहराते हुये देखकर मन हर्षित होता, रोंगटे खड़े होते और हृदयमें एक हिलोर सी उठती थी। धन्य था वह दिन !!

आधी शताब्दीके संघर्षके परिणाममें हमें आज़ादी मिली। बिना संघर्षके जीवन नहीं, बल्कि जीवन रूप में मृत्यु ही रहती है। यह संघर्ष और राजनीतिक "हलचल" यथार्थ थे। जीवित रहनेके लिए हलचल पैदाकी। हमने विदेशियोंको सन्, १८५७ के विद्रोह द्वारा दिखलाया था कि उनका शासन हमें नहीं चाहिये परन्तु जब उसमें असफल हुये तो कुछ निराशासी छाने लगी। लोग धीरे धीरे अंग्रेजोंके चंगुलमें फंसने लगे, सम्भव था कि हमारा सदाके लिए पतन हो जाता, उस समय सबसे पहले महापुरुष जिन्होंने भारत की पराधीनता को बुरा बतलाया वे महर्षि दयानन्द ही थे। उन्होंने वेदोंकी शरण ली और उसीसे देशकी रक्षा का उपाय ढूंढ़ निकाला। वेदका एक मन्त्र है:—

यदजः प्रथमं सम्बभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय।
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥

(अथ० १० । ७ । ३१)

(अजः) हलचल करने वाला (प्रथमं) पहले (यत्) जब (संबभूव) मिल जुलकर प्रकट होता है (तत्) उस समय (सःह) वही (स्वराज्यं) स्वराज्य को (इयाय) प्राप्त होता है (यस्मात्) जिससे (अन्यत्) दूसरा कोईभी (परं) श्रेष्ठ (भूतं न अस्ति) हुआ नहीं है।

इसी वेद मन्त्र "यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्" अर्थात् जिस (स्वराज्य) से दूसरा कोई भी श्रेष्ठ (राज्य) नहीं है, के आधारपर महर्षिने यह पंक्तियां लिखीं—"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत मतान्तरके आग्रह रहित, अपने और परायेका पक्षपात, शून्य, प्रजापर पिता माताके समान, कृपा न्याय और दयाके साथ विदेशियोंका राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" हमने "स्वदेशी सर्वोपरि उत्तम राज्य" के लिए अपने संघर्ष द्वारा "हलचल" पैदाकी और स्वराज्य को प्राप्त किया।

हमने अपनी स्वतन्त्रता के साथ ही अपने उत्तरदायित्वको भी बढ़ा लिया। अब हम अपने हर कर्त्तव्य के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। स्वाधीनता दिवसपर प्रधान मन्त्रीका यह संदेश महत्त्वपूर्ण है, "प्रत्येक व्यक्तिको यहभी अनुभव करना चाहिये कि स्वाधीन-भारतका एक स्वतन्त्र नागरिक होनेके नाते उसे आंशिक रूपसे कार्यका भार और उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना है।" हमें अनेकों कठिन परिस्थितियों में डालकर आज़ादी दी गयी। इस समय देश के समक्ष तरह तरहकी समस्यायें उपस्थित हैं। हमारे नेता उनको हल करनेके भिन्न भिन्न उपाय सोच रहे हैं। हमें तो ऋग्वेदका यह मन्त्रः—

आ यद् वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥

ऋग्वे० ५ । ६६ । ६

बतला रहा है कि स्वराज्य के चलानेके लिए १. (मित्र) मित्र दृष्टिवाले लोग, २. (ईयचक्षसौ) विस्तृत दृष्टि के लोग ३. (सूरयः) तथा ज्ञानी लोग चाहिये। ऐसे ही लोगोंके द्वारा देशका कल्याण हो सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय संस्था कांग्रेसके नेतृत्वमें देश कुछ प्रगति कर रहा है। उसमें कुछ ऐसे योग्य व्यक्ति अवश्य उपस्थित हैं जो जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं किन स्वराज्य के साथ ही सुराज्य भी हो जाय, परन्तु अभी

देश में नाना प्रकार के उपद्रव, विघ्न और स्वार्थके कारण रास्ता नहीं मिल पता। या हमें अपनी कमजोरियों को दूर करना होगा और अपनी त्रुटियों को ठीक करना होगा। स्वदेशके नाशके कारणों को स्वामीजी महाराज ने भी विचारपूर्वक सोचकर जहां तहां उल्लेख किया है, जिनको संग्रह कर, पुनः विचार कर और उनपर चलकर हम लाभ उठा सकते हैं।

"विदेशियोंके आर्यावर्त्तमें राज्य होनेके कारण आपसकी फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्यका सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना, बाल्यावस्थामें अस्वयंवर विवाह विषयासक्ति, मिथ्याभाषण, वेद विद्याका अप्रचार आदि कुकर्म हैं।"—इन शब्दोंके द्वारा महर्षिकी तीव्र सुधारकी इच्छाको हम भले प्रकार समझ सकते हैं। फिर आपने लिखा, "भिन्न, भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा और अलग अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्परका पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।" पुनः यह भी लिखा, "देखो, जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे" गौ रक्षाके लिए महर्षिने "गो करुणानिधि" नामकी पुस्तक लिखकर उपयोगिताके आधारपर गाय की रक्षा देशके लिए हितकर बतलाते हुये एक आन्दोलन किया था। ईश्वरके शुद्ध स्वरूपकी उपासनाका ह्रास देख कर ऋषिने दुःखित हृदयसे कहा—"हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाशको प्राप्त हुए" हमारे पतनका कारण 'पत्थरपूजा' भी है। हम भौतिक वस्तुओंके उपासक हुये जा रहे हैं। हमें इससेभी बचना है। हम पाश्चात्य सभ्यताकी छापसे रंग न जाँय इसका भय है। हमें कम्युनिष्ट विचार धारासे देशको बचाना है।

इस प्रकार यदि स्वतन्त्रताका प्रथम सिंह गर्जन करने वाले महर्षिके शब्दोंको इकट्ठा कर उनके आधार पर हम अपने कल्याणका उचित रास्ता ग्रहण करें तो अवश्य पुनः पुनीत गौरवको प्राप्त कर सकते हैं। सुधार और स्वाधीनताका परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध है। देशकी स्वाधीनतामें आर्यसमाज सुधारके प्रचार द्वारा बड़ा काम कर रहा है। कांग्रेसको आर्यसमाजियोंके महत्त्वपूर्ण काम में सहयोग प्रदान करना चाहिये। अभी हमारे नेताओंको आर्यसमाजका एक सुधार 'शुद्धि' ठीक नहीं जचता। उसका मूल कारण यह है कि वे केवल 'शुद्धि' शब्दके प्रयोग मात्रसे ही चबड़ा जाते हैं। 'शुद्धि' है क्या? किसी वस्तुका ठीक हालतमें लाना। तो क्या कोई नेता ऐसा है जो मुसलमानोंके वर्त्तमान विदेशी दृष्टिकोण तथा जिन्हाई दृष्टिकोणको बदलना न चाहता हो। बस! आर्यसमाज भी इतना ही चाहता है। वह चाहता है कि वे भारत में सब प्रकार से भारतीय होकर रहें। उनके तनके साथ उनके मनकी भी शुद्धि होजाय।

यदि हम आज आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द जी द्वारा निर्मित दस नियमोंमें से केवल दो के ही अनुसार चलसकें तो हमारे देश तथा विदेशमें सर्वत्र कल्याण हो जाय। नियम ९—"प्रत्येक को अपनी ही उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझना चाहिये" कितना उत्तम विचार है। क्या इसी एक मन्त्रसे हम स्वार्थ को छोड़ कर देशका सपूर्ण कल्याण न कर लेगें? प० नेहरूजीने स्वाधीनतादिवस पर निम्न सदेश भेजा है—"हमें दल, सम्प्रदाय या प्रान्तका नहीं अपितु समस्त भारतके हितको ध्यानमें रखकर सार्वजनिक भलाईके कार्यमें लग जाना है" वास्तवमें इसके द्वारा ही कल्याण होसकता है।

फिर नियम ६ में महर्षिने लिखा—"संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्य उद्देश्य है।" वे भारतसे भी आगे बढ़गये। भारतके कल्याणके बाद संसारका कल्याण करना होगा। भौतिकवादके अधकारयुक्त चक्रमें फसकर विश्व आज कराह रहा है। उसे अपने 'जगद्गुरु' होनेके उत्तरदायित्वको समझते हुये हमें ऐसी आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करना है। जिसके द्वारा पुनः मानव अपने को मानव कहनेके योग्य बन जाय। और साथही आर्य सार्वभौम राज्य स्थापित हो जाय क्योंकि, 'जब तक समस्त संसारके मनुष्य एकही रीति नीतिके न हो जाँय और जब तक सब मनुष्य एक दूसरेके लिए त्याग भाव से वर्त्ताव न करें, तब तक किसी को भी सुख शान्ति नहीं मिल सकती और न आर्योंकी आदर्श नीति रीति ही जगद्व्यापी हो सकती है। यह जगद्व्यापी एकता सार्वभौम चक्रवर्ती राज्यसे ही स्थापित हो सकती है'।

इस प्रकार आर्य सार्वभौम राज्य स्थापित कर हम वेदके मन्त्र, "सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समुव्रता" के आधार पर सबका (तन्वः मनांसि व्रता) अर्थात् तन, मन, कर्म, एक बनाकर समाजके अन्दर एकता और सत्ता बनाये रखकर सुख शान्ति का जीवन व्यतीत करें।

पितरों का श्राद्ध और तर्पण

[लेखक—साहित्याचार्य श्री वीरेन्द्र शास्त्री, एम० ए०]

आश्विन (क्वांर) के महीने का पहला (कृष्ण) पक्ष 'पितृपक्ष' कहाता है। इस पक्ष में पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध और तर्पण धूमधाम से करने की परम्परा चली आ रही है। पक्ष के अन्त में 'पितृविसर्जनी' अमावस्या आती है जिस दिन पितरों का विसर्जन किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि ये विसर्जित किये जानेवाले पितर इस तिथि से कुछ महीने पहले से (सम्भवतः वर्षा ऋतु के आरम्भ से) ही निमन्त्रित किये जाकर अपना भ्रमण कार्य छोड़कर वनों तथा नगर के प्रान्त भागों (उपवनों) में स्थित आश्रमों से नगर और ग्रामों में आकर निवास कर रहे थे। इस पक्ष में वर्षा-ऋतु के समाप्त होने के अवसर पर वे पितर फिर अपने अपने काम के लिये भ्रमण करने को प्रस्तुत होते हैं अतः उनका श्राद्ध और तर्पण करके उनको आदर सहित विसर्जित किया जाता है। इसी लिये इस पक्ष का नाम 'पितृपक्ष' पड़ गया।

इस प्रकार जो निमन्त्रण और विसर्जन तथा श्राद्ध और तर्पण जीवित पितरों का ही हो सकता है वह पौराणिक काल में, वास्तव में जीवितों का किये जाने पर भी, मृतकों के उद्देश्य से किया जाने लगा। एक असत्य भावना से जनता ग्रस्त होने लगी और पौराणिक पण्डितों ने भी इसी भावना को प्रचारित किया कि इस प्रकार किया गया श्राद्ध और तर्पण करनेवाले के पिता, दादे, परदादे आदि को प्राप्त होगा। सम्भव है कि यह अर्थवाद हो अर्थात् पितृ यज्ञ (जीवित पितरों की सेवा-सुश्रूषा) के करने में उदासीन हो जानेवाले मनुष्यों को यह कह कर उसमें प्रेरित किया गया कि इससे उन्हीं के मृत पितर तृप्त होंगे और इस प्रकार विनष्ट होते हुए पितृयज्ञ की परम्परा को किसी प्रकार जीवित रखा गया।

धर्म के नाम पर अधर्म—मृतकों के निमित्त श्राद्ध—होते देखकर नास्तिक चार्वाकों को यह कहने का ठीक ही अवसर मिला—

मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत् तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेय कल्पनम्॥

अर्थात् यदि श्राद्ध मरे हुए प्राणियों की तृप्ति का कारण है तो यात्रा में गये हुए प्राणियों का साथ में भोजन आदि लेकर जाना व्यर्थ है! जब यहीं, इस पृथ्वी पर ही, विदेश गये व्यक्ति के नाम पर किसी व्यक्ति को श्राद्धपूर्वक खिलाया हुआ भोजन उसके पास नहीं पहुँचता तो जिसके पुनर्जन्म के स्थान तथा योनि का किंचिन्मात्र पता नहीं ऐसे मृत प्राणी के पास पहुँच जाना तो सर्वथा असम्भव है। आज भी यह तर्क उतना ही प्रबल है और भविष्य में भी रहेगा। फिर तो मृतकों के उद्देश्य से किया गया श्राद्ध अन्ध-परम्परा ही सिद्ध हुई।

अब हमें 'श्राद्ध', 'तर्पण' तथा 'पितर' इन तीनों पर विचार करना है।

श्राद्ध

महर्षि मनु ने मनुस्मृति में पाँच महायज्ञ नित्य करने के लिए बताये हैं—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव) और अतिथियज्ञ। इनमें से तीसरे पितृयज्ञ का अर्थ "माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करना" है। इसी पितृयज्ञ के दो भेद अथवा स्वरूप श्राद्ध और तर्पण नाम से कहे जाते हैं। 'श्रत्' का अर्थ है सत्य। जिस काम में 'श्रत्' (सत्य) धारण किया जाय वह (श्रत्+धा=) 'श्रद्धा' कहाता है; और जो काम श्रद्धा से (अर्थात् सत्य को धारण करके) किया जावे उसे 'श्राद्ध' कहते हैं। इस प्रकार पितरों की श्रद्धा से सेवा करना ही 'पितृश्राद्ध' अथवा 'श्राद्ध' जानना चाहिये। यह श्रद्धापूर्वक सेवा प्रत्यक्ष जीवितों की ही हो सकती है तथा वस्तुतः की जाती है। यदि हम जीवित पितरों की सेवा सुश्रूषा के लिए 'श्राद्ध' शब्द का प्रयोग वेग से प्रचलित कर दें तो बहुत कुछ अंश में मृतक श्राद्ध की भावना दूर हो सकती है। अपने जीवित माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी, विद्वान् ब्राह्मणों से यदि कहा जाये—'भगवन्, आज हम आपका श्राद्ध करेंगे; आपके श्राद्ध का निमन्त्रण देते हैं, स्वीकार कीजिये।' आदि, तो पहले तो बड़ा अटपटा मालूम होगा किन्तु पीछे से

इस श्राद्ध शब्द का शुद्ध अर्थ प्रचलित होकर मृतक निमित्त श्राद्ध की भावना देश से समूल नष्ट की जा सकती है।

तर्पण

'तर्पण' भी पितृयज्ञ का ही रूप है। इसका प्रयोग भी जीवितों के लिए ही किया जा सकता है। इस शब्द का व्यवहार भी जीवित जनों के लिये करके सच्चे वैदिक-श्राद्ध की भावना तथा परम्परा को पुनः उज्जीवित किया जा सकता है।

'तर्पण' शब्द का अर्थ है—जिस काम से माता पिता आदि पितर तृप्त=प्रसन्न हों, जिस काम से पितरों को तृप्त=प्रसन्न किया जाय। जिन पूर्वजों का स्थान आदि पता नहीं उनको कैसे तृप्त किया जा सकता है? इस प्रकार यह तर्पण भी मरे हुओं के निमित्त तो किया ही नहीं जा सकता। क्योंकि इस तर्पण में तो "अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर सवारियाँ आदि देकर अच्छे प्रकार से तृप्त करना है अर्थात् जिस जिस काम से उनकी आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस-उस काम से प्रीति-पूर्वक उनकी सेवा करना है"। यह व्यवहार जीवितों के साथ ही किया जा सकता है।

तर्पण (तृप्त करने) के साथ सत्कार देवों, ऋषियों और पितरों का करना बताया गया है। 'विद्वांसो हि देवाः' यह शतपथ ब्राह्मण पुस्तक का वचन तो अब सभी जान और मान गये हैं। चारों वेदों के पढ़ने से 'ब्रह्मा' की उपाधि पाये देवता (विद्वान्) तथा उनसे कम विद्वान्-जनों की और उनके परिवार—पत्नी, पुत्र, शिष्य, सेवक आदि की भी सेवा करना 'देव तर्पण' है।

ब्रह्मा और उनके पुत्र, पौत्र (मरीचि) से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त मन्त्र द्रष्टाओं के समान जो देश, धर्म, जाति की उन्नति के लिये अच्छी मन्त्रणा (सलाह) देने-वाले तथा दूरदर्शी विद्वान् और वेदव्याख्याता, विद्या पढ़ानेवाले अध्यापक जन हैं उनकी तथा उनकी पत्नी, पुत्र, शिष्य आदि की तृप्ति के साथ सत्कार का नाम 'ऋषि-तर्पण' है।

पितरों तथा उनसे सम्बन्धित जनों का तृप्त करना 'पितृतर्पण' है। इसका बहुत अधिक विस्तार है, क्योंकि 'पितर' अनेक प्रकार के हैं।

पितृगण [पितर]

निम्नलिखित प्रकार के पितृगण [पितर] माने गये हैं—

१—सोमसद्=परमात्मा के भक्त तथा पदार्थ विद्या में निपुण।
२—अग्निष्वात्त=अग्नि (विद्युत् आदि) का जाननेवाले विद्वान् (वैज्ञानिक)
३—बर्हिषद्=उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार चलानेवाले।
४—सोमपा=ऐश्वर्य के रक्षक, औषधि द्वारा रोगनाशक।
५—हविर्भुक्=सेवन करने योग्य वस्तुओं के प्रचारक तथा मादक अभक्ष्य वस्तुओं के निषेधक।
६—आज्यपा=जानने और प्राप्त करने योग्य—घृत दुग्ध आदि वस्तुओं के रक्षक तथा प्रचारक।
७—सुकाली=जिनका समय अच्छे प्रकार धर्म-कार्य करने में व्यतीत होता हो।
८—यम=दुष्टों को दण्ड देनेवाले, श्रेष्ठों के पालक—न्यायाधीश।
९—पिता, पितामह, प्रपितामह=बाप दादा, परदादा।
माता, पितामही, प्रपितामही=माँ, दादी, परदादी।
पत्नी, सम्बन्धी, सगोत्र=अपनी स्त्री, बहिन आदि रिश्तेदार तथा गोत्र के कुटुम्बी।

पितरों के विषय में कुछ वेद मन्त्र

यजुर्वेद के दूसरे तथा १९ वें अध्याय में अनेक मन्त्र पितरों का वर्णन करनेवाले हैं। ये सब जीवित पितरों के सम्बन्ध में ही हैं, फिर भी मृतक श्राद्ध के पक्षपाती इनसे अपना पक्ष सिद्ध करने की असफल चेष्टा किया करते हैं। पाठकों की सेवा में कुछ मन्त्र प्रस्तुत किये जाते हैं—

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभाग मावृषायध्वम्।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥
यजु० २।३१

अर्थात् हे पितरो, विद्या द्वारा पालन करने वाले लोग, आप यहाँ (इस स्थानमें, इस सभामें, इस पाठशालामें) हमें विद्या विज्ञान देकर आनन्दित कीजिये। अपने अपने भाग (विद्या अध्यापन सम्बन्धी कार्य तथा भोजन वस्त्रादि धन) को विद्वान्के समान स्वीकार कर आनन्दित होइये। इस सत्यके उपदेश, विद्यादान आदि काममें हर्षसे सदा उत्साहयुक्त होइये, तथा यथायोग्य सत्कारको प्राप्त कर श्रेष्ठ आचरणसे प्रसन्न होते हुए जीवन व्यतीत कीजिये।

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितर शोषाय,
नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै।
नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे
नमो वः पितरः पितरो नमो वः।
गृहान् नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मै
तद्वः पितरो वासः ॥ यजुः २।३२

हे पितर लोगो, हम लोग आपको (रसाय) विज्ञानरूपी आनन्द, रसादिक ओषधि और जलकी विद्याका तथा वसन्तऋतुके व्यवहारका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये नमस्कार करते हैं। हे पितरो, (शोषाय) ओषधि और जलको सुखाने वाली अग्नि और वायुकी विद्या तथा ग्रीष्मऋतु का बोध होनेके लिये, (जीवाय) जीविका, जीवन और पूर्ण आयु तथा वर्षाऋतुका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये; (स्वधायै) अन्न, पृथिवी, राज्य, न्यायका प्रकाश तथा मोक्ष विद्याकी प्राप्ति और शरद् ऋतुके ज्ञानके लिये, (घोराय) घोर विपत्तिमें निर्वाह की विद्या जानने और दुःख दूर करने तथा हेमन्त ऋतु के ज्ञानके लिये; और (मन्यवे) दुष्टों तथा दुष्टकर्मों पर क्रोध करने तथा वैसा व्यवहार सीखनेके लिये और शिशिर ऋतुका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपको बारम्बार नमस्कार हो। हे पितरो (गृहान् नः दत्त) आप हमारे घरोंमें नित्य आकर गृहाश्रमकी उपयोगी विद्याओं (डोमेस्टिक साइन्स) का प्रदान कीजिये। हे पितरो (सतो नः देष्म) हम अपने अधिकारमें विद्यमान पदार्थोंको आपके लिये देते हैं तथा सदा देवें। हे पितरो, (तद्वः वासः) यह आपके लिये वस्त्र हैं। इनको स्वीकार कर संसारमें विद्याका उपदेश कीजिये।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषो ऽसत् ॥

यजुः २। ३३

हे विद्यादान करने वाले पितरो, आप गर्भके समान सुरक्षित, (पुष्करस्रजं) फूलमालाको धारण करने वालेके समान सुशोभित और विद्याग्रहणार्थ फूलमाल धारण किये हुए इस कुमार ब्रह्मचारीको (आधत्त) अच्छे प्रकार स्वीकार कीजिये, (यथा इह) जिससे यह इस संसार वे हमारे कुलमें (पुरुष असत्) विद्वान् और पुरुषार्थी होजावे।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

यजुः २। ३४

ईश्वरका आदेश है कि गृहस्थ मनुष्य पुत्रादिकों को आज्ञा दे कि तुम सब (ऊर्जवहन्तीः अमृत) बलकारी, सुखदायक स्वादिष्ट पेय-जल आदि और रोगनाशक ओषधि तथा मिठाइयाँ, (पयः घृतं कीलालं) दूध, घी और उत्तमरीति से पकाया हुआ अन्न, पकवान आदि (परिस्रुतम्) रससे भरे, पके डालके फल और शहद आदि देकर (मे पितॄन् तर्पयत) मेरे पितरों को तृप्त करो, और (स्वधाः स्थ) अपने धन, विद्या, भक्ति आदिको धारण करने वाले बनो।

यजुर्वेद अध्याय १९ में पितरों का वर्णन

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये
तेषां लोकः स्वधाः नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ४५ ॥

जो हित करनेमें समान बुद्धि वाले, तुल्य विज्ञान वाले प्रजाके रक्षक न्यायाधीश लोग, यम=न्यायकारी परमेश्वरके अथवा राष्ट्रपतिके राज्यमें हैं (तेषां लोकः स्वधा नमः) उनका देश और दर्शन हमें प्राप्त हो, हम उनके लिये अन्न प्रदान तथा नमस्कार करते हैं। अथवा उनकी न्याय दृष्टि अमृत रूप है, उन्हें नमस्कार हो। (यज्ञ देवेषु कल्पताम्) उनका प्रजापालनरूपी व्यवहार और न्याय, विद्वानोंमें प्रसिद्ध हों और प्राप्त हो।

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिल्लोके शतं समाः ॥ ४६ ॥

जो समान गुणकर्मस्वभाववाले, मनुष्योंके हित रूप समानधर्म में मन लगाने वाले, मेरे (जीवाः) जीवित पिता, आचार्य आदि (जीवेषु) जीवित हम सबके बीच वर्तमान हैं, उनकी भी शोभा और लक्ष्मी इस लोकमें सौ वर्षों तक मुझ में स्थिर रहे।

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुर वृका ऋतज्ञास्ते नो ऽवन्तु पितरो हवेषु ।४७।

जो छोटी अवस्था के कनिष्ठ, बड़े और मध्यम, सोम्य=चन्द्रमाके समान, शान्ति आदि गुण सम्पन्न पिता आदि हैं वे (उदीरताम्) अच्छे कामों में प्रेरित करें। और जो (अवृकाः) चोरी आदि दोषों और शत्रुओंसे रहित, ऋतज्ञ=ब्रह्म वेद, धर्म और सत्य को जानने वाले पिता आदि (असुं ईयुः) उत्तम प्राणोंको धारण कर जीवित हैं वे (हवेषु नः अवन्तु) युद्ध आदि में, सहायक होकर तथा युद्ध विद्याका उपदेश करके, हमारी रक्षा करें।

आङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम।
यजुः ॥ ५० ॥

जो अङ्गिरसः=संसारके सब अङ्गोंके तत्त्व तथा ईश्वरको जानने वाले हमारे पिता आदि ज्ञानीलोग

नवग्व=नये २ ज्ञानके उपदेशक; अथर्वा=अहिंसक और अथर्ववेद तथा धनुर्वेद जाननेवाले; भृगु=परिपक्व ज्ञानी और शुद्ध; सोम्य शान्त और ऐश्वर्य पाने योग्य हैं उन यज्ञादि कर्मोंमें कुशल, उत्तम व्यवहार करने वालोंकी सुमति =अच्छी बुद्धि तथा भद्र सौमनस=कल्याणकारी और मन प्रसन्न करनेवाले व्यवहारमें स्याम=प्रवृत्त होवें ।

ये नः पूर्वे सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्‌भिः प्रतिकाममत्तु ॥५१॥

जो हमसे पहले उत्पन्न शान्त और वसिष्ठ=अत्यन्तधनी पिता आदि सोमपान तथा सुखों का उपभोग करते और कराते हैं । उन उशद्‌भिः=ईश्वर और धर्म को चाहनेवाले पितरों के साथ संरराणः=सत्यविद्या तथा सुखों को देने वाला, हवींषि उशन्=विज्ञान आदि को देनेकी कामना करता हुआ यमः=न्यायकारी परमेश्वर प्रसिद्ध है । अतः (मनुष्यप्रतिकामं अत्तु) सब इच्छाओं को भोगे। अथवा ऐसी (यम) न्याय और योगयुक्त सन्तान सब कामनाओं का भोग करे ।

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वा गिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आगतावसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात ॥ ५५ ॥

[बर्हिषदः] हे ब्रह्मज्ञ, विद्वान्, सभामें बैठने वाले पितरो, [ऊत्या अर्वाक् हव्या चकृम] सुरक्षित रूपसे आपके पीछे इन ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को बनाया है, [जुषध्वम्] स्वीकार कीजिए । [ते अवसा शंतमेन आगत] वे आप सब अत्यन्त कल्याणके साथ सुरक्षित होकर आवें । [अथा नः शंयोः अरपः दधात्] पश्चात् हमारे लिये विज्ञानरूप सुख, सत्य आचरण तथा निष्पापता को धारण कराइये ।

आहं पितॄन्त्सुविदत्रां अवित्सि नपातञ्च विक्रमणञ्च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः।५६

[अहं सुविदत्रान् पितॄन्] मैं उत्तम सुख आदि देने वाले पितरों को और [विष्णोः नपातं विक्रमणं च आ अवित्सि] व्यापक परमेश्वर के नाशरहित सृष्टिक्रम तथा मोक्षपद को अच्छी प्रकार जानता हूँ। [ये बर्हिषदः] जो उत्तम आसनपर स्थित होने वाले, [स्वधया] अन्नादिसे तृप्त, [सुतस्य पित्वः आभजन्त] अच्छी प्रकार बनाये हुये सुगन्धित पेय का सेवन करते हैं [ते इह आगमिष्ठाः] वे यहां हमारे पास आवें ।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५७॥

जो ऐश्वर्यशाली पितर लोग अत्युत्तम, प्रिय निधिषु= रत्नादि से भरे कोषों के निमित्त बुलाये हुए हैं वे यहाँ आवें, हमारे वचनों को सुनें और हमको उपदेश दें। इस प्रकार वे हमारी रक्षा करें ।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥
यजुः, १९ । ५८

जो चन्द्रमाके तुल्य शान्त, शमदमादि गुणयुक्त,अग्नि आदि के विज्ञानमें निपुण, अन्त और विद्या के दानसे हमारे रक्षक जनक अध्यापक और उपदेशक रूपी पिता हैं वे देवयानैः=विद्वान् लोगोंके आने जाने योग्य धर्मयुक्त मार्गों से आवें, अथवा विमानादि दिव्य सवारियों पर चढ़के आवें । और इसका पढ़ावे उपदेशक करने रूप व्यवहारमें वर्तमान होके अन्नादिसे आनन्दको प्राप्त हुए हमको उपदेश करें और बढ़ावें तथा हमारी सदा रक्षा करें ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ।,
यजुः, १९ । ५९

अग्निविद्याके जानने वाले हे पितर लोगो, आप उपदेशक होकर हमारे घरों में आकर उपदेश और निवास कीजिये । उत्तम २ गुण युक्त होकर सभा के बीचमेंये सत्य न्याय करने वाले हों । आप हविः=अपनेही दान और ग्रहण के योग्य विद्या आदि गुणोंका दान और ग्रहण करने वाले हों खानेके योग्य अन्न आदि को खावें । विद्यादि जो उत्तम धन है जिससे वीर पुरुष युक्त सेनाकी प्राप्ति होती है उसके उपदेश से हमको पुष्ट करें ।

अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते,
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥

जो पितर अग्नि विद्या और सोम विद्या के जानने वाले तथा जो कि दिव अर्थात् विज्ञान रूप प्रकाशके बीच में सुख-भोगसे सुखी रहते हैं उनके हितके लिये स्वराट्=जो सब प्रकाशस्वरूप परमेश्वर है वह प्राण विद्या का प्रकाश कर देता है । इस लिये हम प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर आप अपनी कृपासे उनके शरीर सदा सुखी, तेजस्वी और रोग रहित रखिये कि जिससे हमें उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहे ।

—०—

आत्म-तत्त्व

[श्री भागवत मिश्र रचित कठोपनिषद् के हिन्दी पद्यानुवाद से]

१

कहा शिष्यने पृथक धर्मसे, है जो पृथक अधर्मों से।
जो है पृथक अकृतसे सब विधि, पृथक सभी कृत कर्मोंसे।
भूतकाल से पृथक और जो है भी पृथक भविष्यत से।
उसी तत्त्व को मुझे बता दो करो कृपा वैवस्वत हे !

२

कहा मृत्यु ने जिस पद का ये चारों वेद बखान करें।
सारे तप को जिस पद के हित प्यारे शिष्य ! बयान करें ॥
यतिगण जिस की इच्छा से ही ब्रह्मचर्य को ग्रहण करें।
कहता हूँ संक्षेप रूप से, 'ॐ' 'ॐ' ही उसे कहें ॥

३

यह अक्षर ही परब्रह्म है अपर ब्रह्म भी इसे कहें।
जान इसी अक्षरको सब जन मनवांछित फल प्राप्त करें ॥
'ॐ' यही आलम्बन उत्तम इस को आश्रय श्रेष्ठ कहें ॥
जान इसी आश्रय को सब जन ब्रह्म-लोक पा बड़े बनें ॥

४

आत्मतत्त्व उत्पन्न न होता मरता भी है कभी नहीं।
यह न विपश्चित् बना कहीं से है न किसी से बना कहीं ॥
नित्य अनादि अजन्मा, इसका होता है क्या नाश कहीं ?
इस शरीर के हत होने पर होता इसका हनन नहीं ॥

५

हन्ता यदि समझे मैं मारूँ, हत समझे यदि मैं मरता।
दोनों समझें नहीं इसे, वह मारे नहीं, न है मरता ॥
है महान् से भी महान् यह और सूक्ष्म से सूक्ष्म कहीं !
देही के उर के भीतर वह छिपा हुआ है तत्त्व सही ॥

६

आत्मा को, उसकी महिमा को देख वही नर सकता है।
शोक रहित हो, ईश-कृपा से आत्मज्ञान जो रखता है ॥
बैठा हुआ दूर जाता है सोये यह सर्वत्र भ्रमे।
अमद, समद उस विभु को जाने क्षमता मेरे बिना किसे ॥

७

है अशरीर शरीरों में वह स्थिर अस्थिर सत्ताओं में।
जान महत्तम विभु आत्मा को पड़े न बुध चिन्ताओं में ॥
वेद-पाठ से आत्म-तत्त्व यह शिष्य कदापि न मिल सकता।
अधिक श्रवणसे मिले नहीं यह नहीं बुद्धिसे भी मिलता ॥

८

जिसको यह अपनाये वह ही आत्म-तत्त्व को पाता है।
आत्म-तत्त्व यह निज स्वरूपको उसको ही दरसाता है ॥
जो शान्त, स्थिर-बुद्धि नहीं जो दुराचार से हटा नहीं।
वह अशान्त-मन बुद्धि-वादसे विभुको क्या पा सके कहीं ॥

जिसका ब्राह्मण क्षत्रिय ओदन और मृत्यु उपसेचन है।
कहाँ ब्रह्म वह जाने इस विधि कौन, नहीं जब साधन है ॥

—o—

वेदोंमें कथित ऐतिहासिक नामोंका रहस्य

[लेखक—अनुसन्धान-कर्ता श्री शिवपूजनसिंह साहित्यालंकार, सिद्धान्तशास्त्री, पोस्टबाक्स ५५०, कानपुर]

(गतांक से आगे)

च्यवन

ऋग्वेद के १०।३९।४; १।११६।१०; १।११७।१३; १।११८।६, ५।७४।५; ७।६८।६; ७।७१।५ में 'च्यवानं' (च्यवन) शब्द आया है।

'च्यवन को ही वेद में 'च्यवान' कहते हैं। ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। च्यु धातु से दोनों बनते हैं। च्युत प्रच्युत अच्युत आदि शब्द इसी धातुसे बने हुए प्रसिद्ध हैं। अतः सिद्ध है कि पतित =गिरे हुए पुरुष का नाम च्यवन है। यह जीवात्मा आदि सृष्टि से अब तक अनेक प्रकारसे गिरता ही चला आया है अतः इसका गुप्त वा अजसिद्ध वा वेद-सिद्ध नाम च्यवान है और लोक में इसी को च्युत वा च्यवन कहेंगे। ❋

सायणाचार्य ऋ० १।११६।१० के भाष्य में लिखते हैं कि वली-पलित युक्त, जीर्णाङ्ग और पुत्रादिकों से परित्यक्त च्यवनंऋषि अश्विद्वय की स्तुति करने लगा। अश्विद्वय ने ऋषि की जरा को दूर कर पुनः यौवन दान किया। यह आख्यान जैमिनीय तलवकार ब्राह्मणमें भी आया है। योरोप के विद्वान प्रो० व्हिटनी, वेबर, म्यूर, डेलब्रूक, मैक्समूलर और कुहन् प्रभृति ने अपने ग्रन्थों में इस आख्यायिका को लेकर अनेक वादानुवाद किये हैं और अपने देशीय कथा से तुलना की है।

च्यवन की आख्यायिका शतपथ ब्रा० ४।१।५ में भी है; परन्तु कथा के अंत में एक और भी विचित्र बात कही है कि जिससे उक्त च्यवन की कथा भी कृत्रिम या कोई भौतिक पदार्थों का अलंकार प्रतीत होता है। वहाँ कथा के अन्त में यह लिखा है कि उस बूढ़े च्यवन को युवा बनाने वाले जो अश्विनौ वैद्य हैं वे द्यावापृथिवी हैं। यथा—

'अथ यदश्विनावित्यीमे ह द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनाविमे हीदं सर्वमश्नुवाताम्' (शतपथ ब्रा० ४।१।५।१६)

द्यौः और पृथिवी में वैद्यभाव को आरोपित करना उक्त च्यवन की सारी कथा को आरोपमात्र सिद्ध करने का हेतु है।

श्री यास्काचार्य लिखते हैं— 'च्यवन ऋषिर्भवति च्यावयिता स्तोमानाम्। च्यवानमित्यप्यस्य निगमा भवन्ति' (निरुक्त ४।१९)

इस पर पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार, पालीरत्न लिखते हैं—'च्यवन= मन्त्र द्रष्टा, यह वेदों का जनाने हारा या वेदों को प्राप्त कराने हारा होता है। णिजन्त 'च्युङ् गतौ' धातु से 'युच्' प्रत्यय (उणा० २।७४)। 'च्यवन' के 'च्यवानम्' इत्यादि रूप में भी वेदमन्त्र हैं अर्थात् च्यवन और च्यवान दोनों समानार्थक हैं। ÷

त्रित

ऋग्वेद में ३१ तथा अथर्व संहिता में ४ स्थलों पर 'त्रित' शब्द आया है।

श्री सायणाचार्य तैत्तिरीय संहिता के अनुसार ऋ० १।५२।५ ऋचा के भाष्य में 'त्रित' के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं— 'अग्निने जल में एकत, द्वित और त्रित नामके पुरुष उत्पन्न किये। त्रित उदक-पानार्थ प्रवृत्त होता हुआ किसी कूप में गिर गया। असुरगणने उसको प्रतिरोध करने के निमित्त उस कूप को किसी प्रस्तर आदि वस्तुओं से आच्छादित कर दिया। अन्त में त्रित परिधियों (कूपकी आच्छादिका) को हटा उससे निकल आया।'

यहां सायण की दृष्टि में 'त्रित' ऋषि का इतिहास है। किन्तु यहां 'त्रित' किसी व्यक्तिविशेषका नाम नहीं है अपितु 'त्रितस्त्रिस्थान इन्द्रः' (निरुक्त ९।२४)। समष्टि में इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्यवान् आग्नेय पदार्थ पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युस्थान में रहने वाला होने से 'त्रित' है।

व्यष्टि में जीवात्मा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में रहने वाला होने से 'त्रित' है।

व्यष्टि में जीवात्मा पुनर्जन्मार्थ कूप अर्थात् संसार या शरीर में जब आया तब यह सूक्त प्रतिभासित हुआ।

ससार भी एक कूप है—'संसार एष कूपः सलिलानि विपत्तिदुःखजन्मानि (वाग्भटालंकार)। महाभारत स्त्रीपर्व अ० ६।७ में 'यस्तत्र कूपो नृपते स तु देहः शरीरिणाम्' में शरीर को कूप कहा है।

❋ वैदिक इतिहासार्थ निर्णय १म संस्करण पृष्ठ २५६

÷ वेदार्थ दीपक पूर्वार्ध प्रथमावृत्ति पृष्ठ २७६

अथर्व० कांड ५, सूक्त १, मन्त्र १,२ में जीवात्मा को त्रित कहा है।

ऋ० ५।९।५ में आप 'त्रित' पर 'ग्रिफ़िथ' लिखते हैं —'त्रित के अर्थ कदाचित् वायु के हैं।'

ऋ० ५।५४ पर ग्रिफ़िथ लिखते हैं—'त्रित मेघ के अर्थ में भी है।'

यजु० १।२३ के भाष्य में ऋषि दयानन्द जी लिखते हैं —'त्रिताय=त्रयाणामग्निकर्महविषां भावाय।'

स्कन्द स्वामी निरुक्त भाष्य में लिखते हैं —'नित्यपक्षे त्रितो नाम शुक्लशब्दलक्षणः कर्म-पाशैस्त्रिः स्वर्गनरक-मर्त्येषु बद्धः कश्चित् क्षेत्रज्ञः। कर्मज्ञानसमुच्चयाभावादस्वर्ग-मवाप्नुवन् नरके घटियन्त्रवद् घटिते संसारे बंभ्रम्य-माणः परिदेवयाञ्चक्रे'। (निरुक्तटीकायां भाग २, पृष्ठ २१०,२११)

वेदाचार्य पं-शिवशंकर शर्मा का सिद्धान्त है—

'त्रित नाम यथार्थ में ईश्वर का है। उसे जो अध्ययन करे वह भी त्रित कहा जा सकता है। पक्षान्तर में त्रैतन भी बनजाता है। वेदोंमें त्रित त्रैतन दोनों पद आते हैं। अथवा (तीर्णतमो मेधया) जो मेधारूप नौका से अज्ञानरूप अन्धकार को पार करे उसे भी त्रित कहते हैं'। ✻

यजु० १। २३ (त्रिताय त्वा। द्विताय त्वा। एकताय त्वा) की व्याख्या करते हुये ऋषि याज्ञवल्क्यजी कहतेहैं— 'चतुर्धा विहितो ह वाऽग्निरास, स यमग्रेऽग्निं होत्राय प्रावृणत स प्राधन्वद्। यं द्वितीयं प्रावृणत स प्रैवा धन्वद्। यं तृतीयं प्रावृणत स प्रैवा धन्वद्। अथ योऽयमेतर्ह्यग्निः स भीषा निलिल्ये। सो ऽपः प्रविवेश। ते देवा अनुविद्य सहसैवाऽद्भ्य आनिन्युः। सोऽपोऽभितिष्ठेवावष्ठ्यूता स्थ अप्रपदनं स्थ, याभ्यो वो मामकामं नयन्तीति तत आप्त्याः सम्बभूवुः त्रितो द्वित एकतः'

(शतपथ ब्राह्मण १।२।२।१५-१८ तथा १।२।३।१ ९)

अर्थात् पूर्व समय में अग्नि चार भागों में विभक्त थी। वह अग्नि जिसको उन्होंने (देवों ने) प्रथम, होत्र कर्म के लिये चुना भाग गयी। पुनः जिस द्वितीय अग्नि को चुना, वह भी भाग गई। पुनः जिस तृतीय अग्नि को चुना वह भी भय से छिप गई और जलों में घुस गई उसको देवताओं ने ढूंढकर बल से बाहर निकाल लिया पुनः उसने जलों को लक्ष्य करके घृणा प्रकट की कि हे जलो! तुम तिरस्करणीय हो जो मेरा आश्रय स्थान न बन सके और तुम्हारे अन्दर से देवता मुझे न चाहते हुये भी निकालते हैं अतः 'आपः' से निकालने के कारण ये आप्त्य हो गये जो कि त्रित, द्वित, और एकत कहलाये'।

शतपथ ब्रा० के अनुसार एकत, द्वित, त्रित ये तीनों यथार्थ में प्राण हैं।

कुत्स

ऋग्वेद में ३५ स्थलों पर तथा अथर्व में ४ स्थलों में 'कुत्स' शब्द आया है।

श्री सायण ऋ० ४।१६।१० के भाष्यमें कुत्स का इति-हास लिखते हैं और उसे रुरुका पुत्र बतलाते हैं; परन्तु यहां कुत्स कोई ऋषि का नाम नहीं है।

श्री यास्काचार्य जी निरुक्त ६।३२ में ऋ० १।१७४।२ की व्याख्या में 'कुत्स' का अर्थ 'कृषक' कहते हैं। 'पुरुकुत्स =सब कृषक, कृषकमात्र। पृथिवीं कृन्ततीति कुत्सः।

'कुत्सः=वज्र' (निघण्टु २।२०)।

ऋ० १।१०६।६ के भाष्य में पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ लिखते हैं:—

'कुत्सः=विद्युद्रूप वज्र' (ऋग्वेद संहिता भाषाभाष्य प्रथम खण्ड द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ३९)।

हिरण्यस्तूप

ऋ० १०।१४९।५ में'हिरण्यस्तूप' नाम आया है। यह मन्त्र निरुक्त १०।३२ में आया है। यास्क लिखते हैं:—

हिरण्यस्तूपो हिरण्मयस्तूपो हिरण्मयः स्तूपोऽस्येति वा, स्तूपः स्त्यायतेः संघातः'।

ऋग्वेद के इस सूक्त का वक्ता ऋषि अर्चन् हिरण्यस्तूप है, अर्थात् इस सूक्त में प्रार्थना करने वाला तत्त्वदर्शी हिरण्यस्तूप है, जो कि परमेश्वर-पूजक अत्यन्त तेजस्वी है।

श्री चमूपति जी एम० ए० भी लिखते हैं:—

'ऋषिने इस शब्दको देख कर अपना नाम हैरण्यस्तूप (हिरण्यस्तूप वाला) रखा है'। +

शुनःशेप

ऋ० ५।२।७; १।२४।१२; १।२४।१३ में 'शुनः शेपः' शब्द आया है। इससे लोग नरबलि प्रथा सिद्ध करते हैं परन्तु शुनःशेप का अर्थ 'पापिष्ठ प्राण' है। ✻

✻ वैदिक इतिहासार्थ निर्णय प्रथम संस्करण पृष्ठ १५१

+ यास्कयुग पृष्ठ २७।

✻ वैदिक इतिहासार्थ निर्णय पृष्ठ ५६ से १२२

मित्रावरुण

ऋ० ७।३३।११ में 'मित्रावरुण' का नाम आया है । यहां 'मित्र' और 'वरुण' कोई देहधारी व्यक्ति नहीं हैं किन्तु विश्व के भौतिक पदार्थ हैं यथा—

'द्यावापृथिव्यौ मित्रावरुणौ' शतपथ ब्रा० १२।९।२।१२

,प्राणापानौ मित्रावरुणौ' तैत्तिरीय० ३।३।६।९

'अयं वै वायुर्मित्रो योऽयं पवते'

शतपथ ब्राह्मण ३।५।४।१४

'स वा एष सूर्योऽपः प्रविश्य वरुणो भवति' कौ०१८।९

अर्थात्—द्यावापृथिवी को मित्र-वरुण कहते हैं ।

प्राण अपान का नाम मित्र- वरुण है ।

वह गतिशील वायु मित्र है ।

अभ्र में प्रविष्ट हुए सूर्य का नाम वरुण है ।

'वरुण' का अर्थ श्री दुर्गाचार्य लिखते हैं:—'वरुणो वृणोतीति सतः (वरुणः कस्मात् वृणोतीति सतः स हि वियद् वृणोति मेघजालेन, इति दुर्गाचार्यः)

अर्थात्—मेघोदक को आकाश में फैलाए रखने वाला वरुण कहलाता है और वह सूक्ष्म भापयुक्त वायु है ।

निघन्टु-पठित 'मित्रावरुण' का अर्थ यास्काचार्य ने वायु किया है । [निरुक्त ९।२,१३]

गृत्समद

निरुक्त ९।४,५ में 'गृत्समद' शब्द आया है । यहां 'गृत्समद' किसी ऋषि या व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है । यथा—

'प्राणो वै गृत्सोऽपानो मदः, स यत्प्राणो गृत्सोऽपानो मदः तस्मात् गृत्समदस्तस्माद् गृत्समद इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्'

ऐतरेयारण्यक २।२।१

प्राण 'गृत्स' है और अपान 'मद' है एवं प्राणापान-मय प्राणात्मा जीवात्मा गृत्समदः हुआ ।

यास्क लिखते हैं—'गृत्समदो गृत्समदनः । गृत्स इति मेधावि नाम, गृणातेः स्तुतिकर्मणः' निरुक्त ९।४

गृत्समद=गृत्समदन, गृत्स=मेधावी

गृत्स=मेधावी, गृत्समद 'निघण्टु ३।१५'

देवापि

ऋ० १०।९८।५ में 'देवापि' शन्तनु का नाम आया है—

'देवापिर्विद्युत् शन्तनुरुदकं वृष्टिलक्षणम्' 'स्कन्दस्वामी'

यहां देवापि को विद्युत् कहा है और शन्तनु जल है ।

देवापिः=देवानामाप्त्या=स हि स्तुतिभिर्देवानामाप्नोति हविः संप्रदानेन च (दुर्गाचार्यः)

अर्थात् देवताओं के लिए स्तुति करने और हवि देने से देवों को प्राप्त होने वाला ।

सरस्वती

पौराणिक भाष्यकार एक विशेष देवी का नाम मानते हैं; परन्तु इसका अर्थ वाणी और विदुषी स्त्री है । यथा—

'वागेव सरस्वती' [ऐतरेय ब्रा० २।२४]

'योषा वै सरस्वती वृषा पूषा' शतपथब्रा० २।५।१।११

ऋभु

ऋ० १०।११०।४ में 'ऋभवः' शब्द आया है ।

ऋभु=मेधावी (निघण्टु ३।१५)

'ऋभव उरू भान्तीति वा, ऋतेन भान्तीति वा' ऋतेन भान्तीति वा' ।

अर्थात्—जो बहुत चमकते हैं, यज्ञ से व सत्यव्यवहार से चमकते हैं, यज्ञ सेवा सत्य से युक्त होते हैं ।

'आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते' (निरुक्त ४।१४)

आदित्य रश्मियों को ऋभु कहते हैं ।

लोध

ऋ० ३।५३।२३ में 'लोधं नयन्ति पशुमन्यमानाः' इसी 'लोध' शब्द को देख कर लोधी लोग वेदों से अपनी जाति सिद्ध करते हैं † । परन्तु यहाँ 'लोध' शब्द ऋषि या जाति विशेष वाचक शब्द नहीं है ।

'लोध-तपोलुब्ध' निघण्टु ४।१

अगस्त्य

अथर्व ४ । ६७ । १ में 'त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः'में 'अगस्त्य'शब्द देखकर लोग उन अगस्त्य ऋषि को समझते हैं जो पुराणों के अनुकूल समुद्र पी गये थे ।

'अगो वृक्षः' (हेमचन्द्रः) । अगं वृक्षं वृक्षमात्रं वनस्पतिवर्गं स्त्यायति संगृह्णातीत्यगस्त्यः स्त्यै शब्दसंघातयोः (भ्वादिः) आतोनुपसर्गे कः अष्टाध्यायी ३।२।२]

अर्थात्—अग-वृक्ष-वृक्षमात्र-वनस्पतिवर्ग का संग्रह करने वाला अगस्त्य कहलाता है ।

'अग=सूर्य' [आप्टे कोष] , अगस्त्य=अग का सहनन करने वाला, इकट्ठा करने वाला । सूर्य रोगनाशक

† लोध क्षत्रिय इतिहास, १म संस्करण, पृष्ठ ३२-३३

है। परमात्मा उस सूर्य का भी निर्माता है। अतः वह महौषधि रूप है। +

रिसर्च स्कालर पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्य भूषण लिखते हैं—

'अगस्त्य ऋषि प्रसिद्ध हैं। पर एक अगस्ति नामक तारा भी प्रसिद्ध है जो वर्षा के अन्त में दिखलाई पड़ता है। उसके उदय होते ही वर्षा बन्द हो जाती है। इस पर से यह कथा गढ़ी गई है कि अगस्त्य ने समुद्र को पीलिया। किन्तु तुलसीदास अपनी रामायणमें लिखते हैं—

'उदय अगस्त पन्थ जल सोखा'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह अगस्त तारा ही है, ऋषि नहीं'। ❋

मनु

ऋ० में ३ स्थलों में 'मनु' शब्द को देखकर लोग मनुस्मृति के कर्ता मनु का अनुमान करते हैं।

ऋ० ८।३०।३ में 'मा नः पथः पित्र्यान् मानवादधि दूरे नैष्ट परावतः' इस मन्त्र से कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि 'मानवात् पथः' का अर्थ मनु महाराज के बताए हुए मार्ग से है। ÷

ऋ० १०। ६३। ७ में 'येभ्यो होत्रं प्रथमामायेजे मनुः' में कुछ लोगों के विचार से किसी मनु-विशेष का उल्लेख है जिसने प्रथम यज्ञ किया था।

परन्तु यहाँ 'मनु' शब्द का अर्थ राजर्षि मनु नहीं है यथा—यजु ५। १६ में आए 'मनवे' शब्द का अर्थ उब्बट ने 'यजमानाय' और महीधर ने 'मनुते जानातीति मनुर्ज्ञानवान् यजमानः' किया है।

इसी ऋ० में आये 'मनु' शब्द का अर्थ ज्ञानवान् मननशील है। यथा—'मनुः=मननशील, ज्ञानवान्' †

प्रजातिर्वै मनुः सहीदं सर्वममनुत'

(शतपथ ब्रा० ६-६-१-१९)

प्रजापति परमात्मा को मनु कहा गया है।

मनु का अर्थ ईश्वर भी है—

'एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्'।

मनुस्मृति १२। १२३

अर्थात् इस परब्रह्म को लोग अग्नि, मनु, प्रजापति, इन्द्र, और शाश्वत ब्रह्म के नाम से पुकारते हैं अर्थात् उसी एक ब्रह्म के यह अनेक नाम हैं।

—क्रमशः

+ 'अथर्व संहिता भाष्य' प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ १८० की पाद टिप्पणी

❋ 'वैदिकसम्पत्ति' द्वितीय संस्करण पृष्ठ ७५

÷ देखो 'वाइड प्रिन्सपुलस आफ हिन्दू ला' जगेन्द्र घोष कृत और पी० वी० काणे कृत हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र

† पं० जयदेवशर्मा विद्यालंकार कृत 'ऋग्वेद संहिता भाष्य' प्रथम खण्ड द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ४६९

सरस्वती की उपासना

[लेखक—श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक]

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते

यह ऋग्वेद के दशम मण्डल के सत्रहवें सूक्त के सातवें मन्त्र का प्रथम चरण है। इस में कहा है—अपने को देव बनाने की कामना वाले सरस्वती को बुलाते हैं। अर्थात् सरस्वती की उपासना—वेदादि शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन से मनुष्य देवता बन जाता है। यह सर्वथा सत्य है कि जिसको भगवती सरस्वती की उपासना का रस प्राप्त हो जाता है वह अनेक सांसारिक व्यसनों से बच जाता है। उस रस के आस्वादन में वह इतना लीन हो जाता है कि उसे सांसारिक कार्यों के लिये समय ही नहीं मिलता।

इसी सारस्वत यज्ञ का स्वाध्याय यज्ञ भी नामान्तर है। स्वाध्याय के लिये कहा है—

स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमादितव्यम्।

अर्थात् स्वाध्याय, वेद का स्वयं पढ़ना और प्रवचन, पढ़ाना इन दो कार्यों में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। इसीलिये आर्यसमाज के तृतीय नियम का उत्तरार्ध है—वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

प्रश्न होता है वेद क्यों पढ़ें? भगवान मनु कहते हैं—सर्वज्ञानमयो हि सः। इसी प्रकार महर्षि दयानन्द कहते हैं कि वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। अतः यदि ज्ञान की उपलब्धि करनी हो और देव बनना हो तो वेद का अध्ययन करो। वेद कहता है—

'सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्' ऋ० १०.१७.७

दाशुषे=यजमान=स्वाध्याय यज्ञ के करने वाले के लिये सरस्वती ज्ञान देती है।

'उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे' ऋ० १०.७१.४

वह अपने स्वरूप को विस्पष्ट कर देती है।

परन्तु यह स्वाध्याय रूपी महायज्ञ है बड़ा कठिन। मनु महाराज कहते हैं—

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।

अर्थात् स्वाध्याय के विरोधी सब कामों को छोड़ दे। भला सांसारिक विषय वासनाओं को छोड़ना क्या सरल काम है? जबतक इन को न छोड़ेगा वेद का अध्ययन हो ही नहीं सकता। इसीलिये शतपथ में कहा है—

यदि ह वा अप्यभ्यक्तोऽलंकृतः सुहितः सुखे शयने स्वाध्यायमधीयीत आ हैव स नखाग्रेभ्यस्तपस्तप्यते य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते। ११.४.६.४।

अर्थात् जो पुरुष चन्दन लगाया हुआ अलंकृत, अच्छे भोजन से तृप्त सुख देने वाले बिस्तर पर लेटा हुआ स्वाध्याय करता है वह नख पर्यन्त (चोटी से एड़ी तक) तप तपता है।

आज देश जाति और समाज की दुर्दशा का प्रधान कारण है वेद के पठन पाठन का अभाव। आज कल सब धान पांच पसेरी का युग है। चाहे वेद का पण्डित हो चाहे कहीं का चपरासी, दोनों के वोट का मूल्य बराबर है। फिर भला किस को आवश्यकता है कि वेद पढ़ने में सिरपच्ची करे, अपनी लौकिक आर्थिक परिस्थिति को नष्ट करे। क्या इसी का नाम साम्यवाद है?

वस्तुतः साम्यवाद शब्द ही ठीक नहीं है चाहिये यथार्थवाद। जो जिसकी योग्यता का हो उसे वही अधिकार प्रदान करना चाहिये। इसीलिए मनु ने कहा है—

एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥

परन्तु हमारी समाजों में क्या होता है? धर्मार्य सभा की व्यवस्था को साधारण सभा परिवर्तित कर सकती है जिस में सभी प्रकार के अज्ञ विज्ञ सुज्ञ व्यक्ति होते हैं और वह भी बहुमत से।

इस प्रकार से वेद की रक्षा नहीं हो सकती चाहे कितना ही गला फाड़ फाड़ कर मञ्चों पर चिल्लाओ, चिमटा भजन मण्डली का वेदोपदेश कराओ या डी० ए० वी० स्कूल खोलो। वेद की रक्षा और उस का प्रचार होगा वेदज्ञ सच्चे तपस्वी ब्राह्मण उत्पन्न करने से।

लोग कहते हैं भजी बनाने से कोई नहीं बनता। इतने गुरुकुलों के स्नातक निकले सभी बुद्धदेव विद्यालंकार नहीं बन गये। हां यह अति स्वल्प मात्रा में सच है परन्तु ९९ प्रतिशत अयुक्त। भला ऐसे कहने वालों से पूछा उन्होंने

कितने गुरुकुलोंके स्नातकों के लिये आजीविका का प्रश्न हल किया है जिससे वे बैठ कर स्वाध्याय कर सकते ? समाज में पुरोहित की आवश्यकता हो तो चाहिये शास्त्री, आचार्य। स्कूलों कालेजों में संस्कृत ध्यापक चाहिये तो सरकारी उपाधि प्राप्त। फिर भला गुरुकुलके स्नातक, जिन्होंने 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' वचन के अनुसार वेदादि के अध्ययन में पूर्ण आयु व्यतीत की, आगे क्या करें ? केवल औषधालय खोलना ही एक कार्य उन के सामने रह जाता है। अतः जबतक समाज में संस्कृतज्ञ का, वेदज्ञ का उचित मान आदर सत्कार न होगा वेद का अध्ययन अध्यापन पनप ही नहीं सकता।

इसलिये यदि आर्य जाति जीवित रहना चाहती है, अपनी प्राचीन संस्कृति की रक्षा चाहती है, उससे उसे प्रेम है तो उसका कर्तव्य है कि वेदके अध्ययन अध्यापनमें प्रवृत्त हो और सच्चे, त्यागी, तपस्वी, वेदज्ञ ब्राह्मणोंको समाज में उचित स्थान दे जिससे जनता में ब्राह्मणत्त्व के उच्च आदर्श को प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो। यदि आप अपना कल्याण चाहते हों तो वेदका वचन याद रखें— 'सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते' 'विद्ययाऽमृतमश्नुते'। इति शम्॥

—०—

हवन-यज्ञ और राजयक्ष्मा

[लेखक— श्री डाक्टर फुन्दनलालजी एम्० डी०, डी० एस० एल०; एम्० आर० ए० एस०]

भारतवर्षमें ज्यों-ज्यों निर्धनता, निर्बलता और विलासिता बढ़ती जाती है त्यों-ही-त्यों तपेदिक की बीमारी भी दिनोंदिन तरक्की कर रही है। बड़े बड़े नगर तो इसके केन्द्रस्थान बन रहे हैं। कलकत्ता, बंबई, दिल्ली, जैसे बड़े नगरोंमें हजारोंकी संख्यामें लोग इसके चंगुलमें फँस रहे हैं। तपेदिकनिवारक सभाकी रिपोर्टसे विदित होता है कि अकेले लखनऊ नगरमें चालीस हज़ार रोगी होनेका अनुमान किया जाता है। विहार प्रान्तमें सन् १९२९ ई० में इस रोगके १५८०८ रोगी केवल सरकारी अस्पतालोंमें आये थे। यहाँतक ही नहीं अब तो कसबे तथा ग्राम भी इससे मुक्त नहीं हैं, और मुक्त रह भी कैसे सकते हैं जब कि इस रोगके भगानेका पर्याप्त यत्न ही नहीं किया जाता।

इंगलैण्ड-जैसे छोटेसे देशने, जहाँ इस रोगकी अधिकता भी नहीं, सन् १९११ ई० के बजटमें ३१५ करोड़ रुपया सेनीटोरियमके लिये स्वीकार किया था। पर हमारे देशकी लीला ही विचित्र है। रोग प्रतिदिन बढ़ रहा है, चिकित्सा अनुसन्धान के लिये कोई प्रयोग-शाला नहीं; कोई खोजका कार्य नहीं होता। विदेशोंमें जो कुछ अनुसन्धान होता है उसीके आधारपर चिकित्सा की जाती है। परिणाम देखनेकी आवश्यकता नहीं। इस ढगसे विदेशोंको रुपया तो अवश्य चला जाता है पर इससे रोगी कितने अच्छे होते हैं यह वे जानते हैं जिनके यहाँ अभाग्यसे कभी इस रोगका रोगी हो चुका है। फिर सिनीटोरियम का यह हाल है कि इतने बड़े देशमें अँगुलियोंपर गिनने योग्य सेनीटोरियम हैं। उनमें भी केवल धनवान् ही जा सकते हैं। निर्धन का तो एक बार उस रोगसे सम्पर्क होनेके पश्चात् मरनेपर ही पीछा छूटता है। हमारे देशके धनी-दानी सज्जन ऐसे कामोंमें दान देनेकी ओर कम ध्यान देते हैं। रोगी भी अविद्या और निर्धनताके कारण जबतक चलता फिरता रहता है डाक्टर के लाख मना करने पर सब काम-काज करता रहता है। उसके कपड़े, जूठन, थूक इत्यादिसे अन्य कुटुम्बी कुछ परहेज़ न करेंगे। और स्वयं भी उसी रोग के शिकार होंगे। मुझे अपनी प्रैक्टीस में अनेक ऐसे रोगी मिले हैं जिनको थोड़ी-सी असावधानी तथा दूसरे रोगियों के सम्पर्कमें आने और पूरा बचाव न रखने के कारण यह रोग हुआ था। वर्तमान सभ्यता में जीवन व्यतीत करने वाले और रात-दिन नगरोंमें मोटरोंकी गर्द और मशीनों की गंदगीभरी वायुमें श्वास लेनेवाले कोई भी सज्जन अपने को इस रोग से सुरक्षित न समझें। तंग सीने और सूखे शरीर वाले तो इस रोग के चंगुल में सुगमता से आ ही सकते हैं पर सावधानी न रखने से बड़े-बड़े हृष्ट-पुष्ट भी इस के शिकार हो जाते हैं। अतः यहां पर कुछ रोग प्रतिषेधक उपायों को लिख कर फिर रोगचिकित्सा पर विचार करेंगे।

१—प्रत्येक मनुष्य को कुछ-न-कुछ व्यायाम अवश्य करना चाहिये। जिससे शरीर पुष्ट बना रहे। ऐसी अवस्था

में यदि रोग के कीटाणु शरीर में प्रविष्ट भी होंगे तो नष्ट हो जायेंगे।

२—अँधेरे, सीलवाले, अपवित्र स्थान में, जहां प्रकाश और वायुका पूर्ण प्रवेश न हो, न रहना चाहिये, क्योंकि अन्वेषण से यह सिद्ध हो चुका है कि तपेदिक के कीड़े जो थूक और पानी, यहां तक कि बर्फ में भी कई महिनों तक जीवित रह सकते हैं, खुली हवा में एक सप्ताह में और धूप में घंटों बल्कि कभी-कभी कुछ मिनटों में ही नष्ट हो जाते हैं।

३—शक्तिसे अधिक कार्य करना और उसके अनुसार भोजन न खाना अथवा इस के विपरीत अधिक पौष्टिक भोजन करना और व्यायाम न करना।

४—अत्यन्त विषयभोग, बालविवाह, निकट संबंधियों में विवाह, चिन्ता, अत्यन्त मदिरापान, स्त्रियों का अधिक पर्दे में रहना, अधिक समय तक बालकों को दूध पिलाना, प्रदर तथा गर्भाशय के रोगों का बहुत समय तक रहना और उन की ठीक चिकित्सा न होना। प्रसव के पश्चात् अच्छा पौष्टिक भोजन न मिलना, मल-मूत्रादि प्राकृतिक वेगों का रोकना और बहुत से मनुष्यों का एक ही बन्द कमरे में सोना। कपड़े, लिहाफ़ आदि से मूँह ढक कर सोना आदि भी इस के उत्पादक कारण हैं।

५—इस रोग के रोगी से विशेष संपर्क रखना, उसकी श्वास, थूक, वस्त्र इत्यादि से पूरा बचाव न रखना और रोगी को पृथ्वी अथवा दीवार पर थूकने देना भी इस रोग के उत्पादक कारण हैं। क्योंकि अन्वेषण से यह भी सिद्ध हो चुका है कि ऐसे सूखे थूक में भी इस रोग का कीड़ा छः महिनेतक जीवित रह सकता है।

महर्षि चरकने क्षय के कारण यह लिखे हैं—

व्यायामोऽनशनं चिन्ता रूक्षाल्पप्रमिताशनम्।
वातातपं भयं शोको रूक्षपानं प्रजागरः॥
कफशोणितशुक्राणामतिवर्तनमोक्षणम्।
काशो भूतोपघातश्च विज्ञेयाः क्षयहेतवः॥

(चरक सूत्रस्थान पं० १७।४८)

बहुत परिश्रम, भूखे रहना, चिन्ता, रूखा और थोड़ा भोजन करना, वायु और धूप का सहना, भय, शोक, रूक्ष वस्तुवों का सेवन, बहुत जागना, कफ और रक्त तथा वीर्य का अत्यन्त निकलना या निकालना, खाँसी और भूतबाधा—इन सब को क्षय होने के कारण जानना चाहिए।

सदा याद रखने की बात

जब कभी आप को खाँसी अधिक समय तक रहे तो उसकी उपेक्षा न कीजिए, किन्तु योग्य चिकित्सक से चिकित्सा कराइये। खांसीके साथ यदि तीसरे पहर को शरीर गिरता-सा मालूम हो तो कदापि देर न करें और किसी ऐसे डाक्टर से रोग निदान करावें जो इस रोग के विशेषज्ञ हों। क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में बड़े बड़े योग्य डाक्टर भी तपेदिक के निदान में भूल करते देखे गये हैं।

चिकित्सा

वैद्यक, यूनानी, होमियोपैथिक, ऐलोपैथिक इत्यादि अनेकों तरीके चिकित्सा के इस समय प्रचलित हैं, इनमेंसे कौन-सा तरीका उत्तम है और किस तरीके से कितने रोगी अच्छे होते हैं यह बताना बहुत कठिन है। हाँ, यह सभी कहते हैं कि इस रोग की चिकित्सा करना साधारण बात नहीं है। अतः यहाँ हम एक दीर्घकालीन अनुभूत विशेष चिकित्सा का वर्णन करते हैं जिस के द्वारा अनेकों हताश रोगी रोग से छुटकारा पाचुके हैं। यह चिकित्सा प्राचीन काल में प्रचलित थी पर कुछ समय से लुप्त हो गई। उस लुप्त हुई विद्या को खोज निकालने के कारण लोग इसे नवीन आविष्कार कहते हैं क्योंकि इस चिकित्सा से असाधारण सफलता प्राप्त हुई है और यदि समर्थ सज्जन इस ओर ध्यान दें तो इस के द्वारा यह रोग देश से दूर किया जा सकता है। अतः लोक हित के लिये उसे यहाँ प्रकाशित की जाती है। मेरा अभिप्राय यज्ञ चिकित्सा से है।

यज्ञ चिकित्सा क्या है ?

रोगनाशक ओषधियों का विधिपूर्वक अग्नि में जलाना और हवन गैस को श्वास तथा रोमछिद्रों द्वारा रोगी के शरीर में नित्यप्रति प्रवेश कराना। साथ ही खान-पान रहन-सहन में निश्चित नियमों का पालन कराना। इसे यज्ञ चिकित्सा कहते हैं।

यज्ञ चिकित्सा क्यों सर्वप्रधान है ?

१—सब विद्वान जानते हैं कि सूक्ष्म में जो शक्ति है वह स्थूल में नहीं। सोने का एक रत्ती टुकडा किसी आदमी को खिला दो कोई लाभ न होगा। उसीको सूक्ष्म करके वर्क बनाकर खिलाओ कुछ पुष्टि देगा। पर जब उसे आग में फूँक कर भस्म बना ली तो केवल एक-एक चावल खिलाने से थोड़े ही दिनों में चेहरे पर लाली, शरीर में

बल, मन में उत्साह उत्पन्न हो कर वृद्ध भी युवा-सदृश बन जायगा। वैद्यलोग जानते हैं कि एक माशे दवा की वैसे बहुत कम शक्ति होती है, उसी दवा को यदि एक सप्ताह तक घोट कर सूक्ष्म किया जाय तो उसकी शक्ति कई गुणा बढ़ जाती है। होमियोपैथी में इसी नियमके आधार पर ओषधियों की पोटैंसी तैयार की जाती है। जिसका प्रभाव बढ़ता चला जाता है। और जब रोगी पर अति शीघ्र प्रभाव करना अभीष्ट होता है तो खिलाने के स्थान में ओषधि सुँघाते हैं।

सुँघानेकी अपेक्षा भी जलीहुई ओषधिका प्रभाव कितना बढ़ता जाता है उसे इस उदाहरण से समझिये। एक मिर्च सूँघने से कुछ न होगा। कूटने से पास बैठे लोगों को खाँसी आवेगी। पर यदि उसको आग में जलावें तो दूर-दूर तक के मनुष्य खाँसने लगेंगे। कारण यह कि अब उसके परमाणु बहुत सूक्ष्म हो गये, अतः उनकी शक्ति बढ़ गयी। अब विचार कीजिये कि रोग के कीड़े एक कतार में रक्खे जावें तो २५००० कीड़े एक इञ्च स्थान घेरेंगे। यदि उन को तौला जावे तो एक खस खस के दाने पर बीस अरब कीड़े चढ़ जायँगे। इतनी सूक्ष्म वस्तु पर स्थूल कणवाली ओषधियोंकी बड़ी मात्राओं की पहुँच ही दुस्तर है, कीड़ों को समाप्त कर उन पर विजय पाना तो दूर की बात है। इसी नियम को न समझने के कारण लोग तपेदिक की चिकित्सा में असफल रहते हैं; और उसे असाध्य समझते हैं। पर ओषधियों का वह अत्यन्त सूक्ष्म भाग जो यज्ञ अग्निद्वारा छिन्न-भिन्न हुआ है, कीटाणुओंको सुगमता से नष्ट कर रोग दूर कर सकता है।

२—पदार्थविद्या से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी वस्तु का अभाव नहीं होता किन्तु रूप बदल जाता है। जो ओषधि मुँह से खायी जाती है, वह रस रक्त बनने के पश्चात् क्षयरोगी के फेफड़ों तक पहुँचेगी। पर अग्नि में जलाई हुई ओषधि श्वासद्वारा सीधी फेफड़ों पर पहुच कर तत्काल प्रभाव करेगी और बहुत सूक्ष्म होने के कारण स्थायी प्रभाव करेगी। गूगल ही लीजिये, आयुर्वेद में इसे अन्य गुणों के साथ रसायन, बलकारक, टूटे को जोड़नेवाला और कृमिनाशक बतलाया है। यज्ञसे इसके सूक्ष्म परमाणु श्वासद्वारा सीधे जख्मी फेफड़े पर पहुँचेंगे और उस के जख्मों को भरेंगे तथा पुष्टि देंगे जिससे धीरे-धीरे रोग दूर हो जायगा। अब विचार कीजिये कि इससे अधिक प्रभावशाली तथा उत्तम दूसरा कौन-सा तरीका रोगनिवृत्ति का हो सकता है।

३—अन्वेषण से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं उनके सूक्ष्म परमाणु हर समय गतिशील रहते हैं, यद्यपि प्रत्यक्ष में वे दृष्टि गोचर नहीं होते। हमारे इस मनुष्य शरीर, कोठी की दीवार, मेज, कुर्सी इत्यादि का प्रत्येक परमाणु गति कर रहा है। यजुर्वेद ४०वें अध्याय के पहले मन्त्र में संसार को 'जगत्यां जगत्' कहकर इसी नियम को बताया है। प्रत्येक परमाणु की गति एक-सी नहीं होती। किन्हीं की गति समान होती है किन्हीं की एक दूसरे के प्रतिकूल। प्रकृति का नियम है कि दो वस्तुएँ एक दूसरे को भगाती हैं। अतः जिन वस्तुओं के परमाणु एक-सी गति करते हैं उन में परस्पर आकर्षण होता है और विरुद्धगतिवाले परस्पर एक दूसरेको दूर भगाते हैं। आपने देखा होगा कि एक श्रेणी में एक साथ पढ़ने वाले कई विद्यार्थियों में से किन्हीं दोमें विशेष मित्रता हो जाती है। शेष में वैसी नहीं होती। रेल में सैकड़ों यात्री साथ-साथ यात्रा करते हैं पर उनमें से किन्हींमें ऐसी घनिष्ठता हो जाती है जो जीवन भर निभती है। किन्हीं पति-पत्नियों में ऐसा गहरा प्रेम होता है कि वे एक दूसरे पर प्राण न्योछावर करने को तैयार रहते हैं जब कि कोई-कोई एक दूसरे को घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। यह सबकुछ भी इसी नियमके आधार पर है कि जिनके स्वभाव इत्यादि के परमाणु एक-सी गति करते हैं उनमें परस्पर आकर्षण तथा प्रेम हो जाता है, और विपरीत गतिवालों में विरोध। इसी प्रकार जिस मनुष्य के शरीर के परमाणु जैसी गति करते हैं उसी गतिवाले रोग या स्वास्थ्य के परमाणुओं का उसकी ओर खिंचाव हो जाता है और जो उसके विपरीत होते हैं वे दूर भागते हैं। अतः तपेदिकके कीटाणु भी उसी मनुष्य पर अधिक आक्रमण करते हैं जिसके भीतर रोगको ग्रहण करने वाली शक्ति विद्यमान है। इसके विपरीत जिसके भीतर लौंग, गूगल, गिलोय इत्यादि तपेदिक-नाशक परमाणु विद्यमान हैं उसपर प्रथम तो वे इसी प्राकृतिक नियमानुसार आक्रमण करेंगे ही नहीं। और करेंगे भी तो निषेधक शक्ति द्वारा विषका प्रभाव नष्ट हो जायगा। जो लोग स्वस्थ अवस्थामें नित्यप्रति ऐसी ओषधियों से हवन करते रहते हैं उनपर आक्रमण हो ही नहीं सकता।

४—ऊपर प्रतिषेधक उपायों में बतलाया गया है कि सीलवाले स्थानमें नहीं रहना चाहिये। सीलमें तपेदिक के कीटाणु बहुत समय तक जीवित रह सकते हैं पर गर्मी और धूममें शीघ्र मर जाते हैं। हवन यज्ञसे सील दूर होना और गर्मीका उत्पन्न होना प्रत्यक्ष दीखता है। अतः जो लोग

नित्यप्रति हवन करते हैं उनपर आक्रमण करनेवाले कीटाणु रोज़ नष्ट होते रहते हैं। और जब रोगी हवन करते हैं तो उनके कीटाणु भी शीघ्र समाप्त हो जाते हैं। गर्मी के साथ कीटाणुनाशक ओषधियां भी होती हैं अतः प्रभाव और भी शीघ्र होता है।

५—किसी भी रोग के कीटाणु जब मनुष्यशरीर में प्रवेश करते हैं तो हमारे शरीर की रोग-निवारक शक्ति—जिसे हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि सदासे जानते थे और प्राणायाम तथा ब्रह्मचर्यद्वारा नित्य बढ़ाया करते थे, पर अब इस सम्बन्ध में वर्तमान विज्ञानमें भी कुछ समयसे खोज होने लगी है जिसे डाक्टरीमें रोगनिवारक शक्ति कहते हैं—रोग को दूर भगाने के लिये एक प्रकारका उफान खाया हुआ रस तथा रक्त के श्वेतकणोंकी सेना जिसे डक्टरीमें 'फागोसैटोसिस' कहते हैं, भेजता है। यदि ये लड़ाई में सफल हो जाते हैं तो रोगके कीटाणु वहीं समाप्त हो जाते हैं और हमें ज्ञात भी नहीं होता कि हमपर किसी रोगका आक्रमण हुआ था। हाँ, इनके निर्बल सिद्ध होनेपर रोग हमारे शरीर पर अधिकार जमा लेता है। 'यह रोगनिवारक शक्ति' कुछ तो जन्मकाल से साथ आती है और कुछ मनुष्यको उत्तम भोजन, शुद्ध सुगन्धित वायुके मिलनेसे उत्पन्न होती है। अतः हवन-यज्ञसे जहाँ 'इम्यूनिटी' बढ़ेगी वहाँ वह उफान रस भी अधिक उत्पन्न होगा क्योंकि गर्मी से उफान शीघ्र आता ही है। इस प्रकार तपेदिकके कृमि हवन करने वाले पर आक्रमण करनेपर भी रोग उत्पन्न करनेमें असफल रहेंगे और रोगकी अवस्थामें हवन करनेसे शीघ्र नष्ट हो जायेंगे।

६—जिस प्रकार हमारे शरीरके ऊपर खालका खोल चढ़ा है उसी प्रकार शरीरके भीतरकी ओर एक मुलायम खालका अस्तर भी लगा है, जो गलेसे लेकर आँतोंके निचले भागतक विशेष रूपसे तर रहता है। जिस मनुष्य की यह खाल या अस्तर बिलकुल ठीक है और उसपर कोई क्षत या खराश नहीं है वह स्वस्थ मनुष्य है और उसपर तपेदिक क्या किसी भी संक्रामक रोगका आक्रमण नहीं हो सकता। इस वैज्ञानिक नियमको समझने वाले बुद्धिमान अनुभवी चिकित्सक सर्वदा रेचक दवाका निषेध करते हैं। क्योंकि इससे आँतों के अस्तर में खराश उत्पन्न होती है। जब रोग-कृमि शरीर में प्रवेश करते हैं तो इन्हीं खराशों द्वारा रक्तमें इस प्रकार फैल जाते हैं जिस प्रकार प्रवेश कराई हुई ओषधि। अब यदि किसी असुविधासे हमारी खाल या अस्तरमें कोई खराश हो जाय तो बाहर की खराशकी चिकित्सा तो अन्य उपायों से भी सुगम है पर भीतरका प्रबन्ध कठिन है। हाँ, जो ऐसी अवस्थामें हवन करते हैं उनके भीतर जब घी, कपूर और गूगल इत्यादिके सूक्ष्म परमाणु पहुँचेंगे तो इस खराशको किस शीघ्रतासे भर देंगे इसको समझना कुछ कठिन नहीं है जबकि इन्हीं वस्तुओं से बाहरकी खराश को भरनेका अनुभव प्रत्येक मनुष्य करके देख सकता है।

युक्तियोंके पश्चात् अब हम इस विषय में कुछ प्रमाण और अनुभव पेश करते हैं—

१. वेद भगवान् का प्रमाण

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥
(अथ० का० ३ अनु० ३ सूक्त ११, म १)

'हे व्याधिग्रस्त, तुझको सुखके साथ चिरकालतक जीने के लिये गुप्त राजयक्ष्मा रोगसे और सम्पूर्ण प्रकट राजयक्ष्मा रोगसे आहुतिद्वारा छुड़ाता हूँ। जो इस समयमें इस प्राणी को पीड़ा ने या पुराने रोग ने ग्रहण किया है उससे वायु तथा अग्निदेवता इसको अवश्य छुड़ावें।'

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेद भगवान् हर प्रकार के तपेदिककी चिकित्सा, चाहे रोग अभी प्रकट हुआ हो या गुप्त हो, वायु और अग्निद्वारा बतलाते हैं और आहुति द्वारा रोगसे छूटनेका आदेश करते हैं। अगला मंत्र—

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय॥

यदि रोगके कारण न्यून आयुवाला हो, अथवा संसार के सुखों से दूर हो गया हो, चाहे मृत्यु के निकट पहुँच चुका हो—ऐसे रोगीको भी महारोगके पाशसे छुड़ाता हूँ। इस रोगीको सौ शरद् ऋतुओं तक जीनेके लिये प्रबल किया है। इससे यह विदित होता है कि खराब-से-खराब अवस्थाका रोगी जिसे चिकित्सक लोग असाध्य कह देते हैं, हवन यज्ञसे अच्छा हो सकता है।

२. आयुर्वेदके प्रामाणिक ग्रन्थ चरक का प्रमाण

यया प्रयुक्तया चेष्टया राजयक्ष्मा पुरा जितः।
तां वेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्॥
(चरक चिकित्सा स्थान अ० ८ श्लोक १२२)

जिस यज्ञके प्रयोगसे प्राचीनकालमें राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था आरोग्य चाहने वाले मनुष्यको उसी वेदविहित यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये।

३. होमियोपैथिक से पुष्टि

होमियोपैथिक चिकित्सा के आविष्कारकर्ता हैनीमन साहब अधिक निर्बल रोगियों को खिलानेके स्थानमें केवल ओषधि सुँघानेका परामर्श देते हैं और उसके लिये वह अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओर्गनन ओफ़ दी मेडिसिन्स' की धारा १९० में लिखते हैं कि 'मेदेके अतिरिक्त जिह्वा और मुँहमें ऐसे भाग हैं जो ओषधिके प्रभावको शीघ्र ग्रहण करते हैं किन्तु नाकका भीतरी भागभी शीघ्रतासे प्रभाव ग्रहण करता है। सबसे अधिक प्रभाव ओषधिका सूँघने और श्वास लेने से होता है।

यदि हैनीमन साहबके समय जर्मनीमें यज्ञका प्रवाह होता तो अवश्य ही वे इस चिकित्साको प्रधान अंग बनाते।

४—एलोपैथिक मत से पुष्टि

एलोपैथिक डाक्टरीमें तपेदिकके रोगीको क्रोज़ोट और यूकलीप्टिस आयल इत्यादिका इन्हलेशन बनाकर सुँघाते हैं और इसका प्रभाव तत्काल होता है। वैसे वही 'क्रोज़ोट' खिलाया भी जाता है। पर वह इतना शीघ्र प्रभाव नहीं करता। ऐसा क्यों होता है इसलिये कि सूँघीहुई दवाके परमाणु सीधे फेफड़ेमें पहुँच कर अपना प्रभाव करते हैं। पर उनमें वह शक्ति नहीं कि स्थायी प्रभाव रख सकें जैसा कि अग्निसे छिन्न भिन्न हुई ओषधिके परमाणु रख सकते हैं।

५. एक योग्य वैद्यकी साक्षी

मैंने अपने कई वर्षोंकी चिकित्साके अनुभवसे निश्चय किया है, जो महारोग ओषधि-भक्षण करनेसे दूर नहीं होते वे वेदोक्त यज्ञोंके द्वारा दूर हो जाते हैं।

कविराज प० सीताराम शास्त्री

६. एक विद्वान् का अनुभव

फ्रांसके विज्ञानवेत्ता प्रो० टिलवर्ट कहते हैं कि 'जलती हुई खांडके धुएँमें वायु शुद्ध करनेकी बड़ी शक्ति है। इससे हैजा, तपेदिक, चेचक इत्यादि विष शीघ्र नष्ट होजाता है'।

७. अन्य विद्वान् की राय

डाक्टर टाटलिट साहबने मुनक्का, किश्मिश इत्यादि सूखे फलोंको जलाकर देखा है और मालूम किया है कि इनके धुएँसे टाइफायड ज्वरके कीटाणु केवल आधे घण्टेमें और दूसरे रोगोंके कीटाणु घण्टे दो घण्टेमें समाप्त होजातेहैं।

८. अन्य विद्वान् की राय

मदरासके सेनेटरी कमिशनर डाक्टर कर्नल किंग आर. एम. एस. ने कालिजके विद्यार्थियोंको बताया कि घी, चावलमें केसर मिलाकर जलानेसे रोगके कीटाणुओंका नाश होता है।

९. अन्य विद्वान् की राय

फ्रांसके डाक्टर हेफकिन, जिन्होंने चेचकका टीका ईजाद किया, कहते हैं कि घी जलानेसे रोगकृमि मरजाते हैं।

१०. केमिकल प्रापर्टीज़ की राय

जायफल, जावित्री, बड़ी इलायची, सूखा चन्दन इत्यादि अग्निमें जलानेसे मुफीद हिस्से ज्यों-के-त्यों रहते हैं या सूक्ष्म हो जाते हैं। पहले-पहल इनसे सुगन्धित तेल गैस बनकर निकलते हैं। हवन गैसमें यह चीजें अपने असली रूपमें मिलती हैं। अग्नि इन चीज़ोंको गैस बना देती है। उड़नेवाले तेलोंके परमाणु दस हजारवेंसे दस करोड़वें हिस्से सेंटीमीटर व्यासवाले देखे गये हैं। अतः हवनमें इन चीज़ों के गुण बहुत बढ़ जाते हैं और ये आसानीसे कीटाणुओंका नाश करते हैं।

—०—

यज्ञ-महिमा!

यज्ञ है वह जो हमें भू से उठा दे।
यज्ञ है वह जो हमें विभुसे मिलादे॥
यज्ञ है वह जो हमें जीना सिखादे।
यज्ञ है वह जो सरल जीवन बनादे॥

यज्ञ बिन जीवन कोई जीवन नहीं है!

गन्धसे इसकी न टिकती वासनायें।
भस्म होती हैं सकल दुर्भावनायें॥
धूम्र बनकर नील नभ में घुमड़ती हैं।
विश्व के कल्याण की शुभ कामनायें॥

मोक्षका यह द्वार है, बन्धन नहीं है!

गूँजते हैं वेद के मृदु गान इस में।
विकल प्राणीमात्रका उत्थान इसमें॥
आर्य-संस्कृतिका भरा अभिमान इसमें।
अमित रोगोंका छिपा अवसान इसमें॥

धर्मकी इसमें कोई उलझन नहीं है!

वेद का ३ प्रकार का अर्थ

भारतीय संस्कृति का मूल वेद है

[वेद और मीमांसा के अद्वितीय विद्वान् श्री अ० चिन्नस्वामी का विद्वत् सम्मेलन में भाषण]

मद्रासी होने के नाते मुझे हिन्दी नहीं मालूम, किन्तु काशी में रहने का अवसर प्राप्त हुआ है, इसलिये मैं हिन्दी में भी भाषण करता हूँ। मै हिन्दी भाषा भाषियों से प्रेम करता हूँ। हिन्दी बहन है और संस्कृत माता। जिस तरह हम लोग माता के गर्भ से पैदा होते हैं उसी प्रकार संस्कृत के गर्भ से हिन्दी पैदा होती है। जैसे हम लोग अपनी माता की रक्षा करते हैं उसी तरह संस्कृत की भी रक्षा करनी चाहिये।

संस्कृतिका स्वरूप कहाँसे आया है? [illegible]सको हम [illegible]ग गौरव समझते हैं यह आदि काल की संस्कृति है। आज वही संस्कृति परिवर्तित रूप में विराजमान है। इस संस्कृति का मूल वेदोंमें पाया जाता है। यद्यपि हम लोग गरीब पण्डित हैं। पुनरपि हम लोगों ने वेदोंकी रक्षा की है। हम लोगों ने धन, गौरव, मान मर्यादाका विचार नहीं किया, बड़े बड़े महलों में रहने की इच्छा नहीं की और जंगल में रहकर फल मूल कन्द खाकर वेदों की रक्षा की। हम लोग अपने शरीर की रक्षा केवल अपने स्वार्थके लिये नहीं करते बल्कि प्राणिमात्र के सुखके लिये और मानव कल्याणके लिए हम लोग उपदेश भी करते हैं, क्योंकि हमारा शास्त्र कहता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

स्वामी दयानन्द इस युग के वेदोद्धारक

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सबों के सुखके लिए ही आर्यसमाजकी स्थापना की। मानवसुख की पुष्टिके लिए वेदोंका प्रचार प्रारम्भसे ही ऋषि-मुनि करते आरहे हैं और वेदोंकी रक्षा भी होती रही। वेदों के अनेक उद्धारक हो गए जिनमें सर्व प्रथम स्वामी दयानन्दजी हैं। स्वामीजी ने चाहा कि वेद तथा वैदिक धर्मका उद्धार हो और हमारी संस्कृति अचल रहे और उसीको सब कोई धारण करे।

स्वामीजीने वेदमन्त्रोंका जिन २ अर्थोंमें भाष्य किया है उससे सनातनधर्मी पण्डितोंका मतभेद हो सकता है, सनातनधर्मी और आर्यसमाजी एक ही हैं। हम सभीको मिलकर काम करना चाहिए। हम लोगों में सिद्धान्त भेद हो सकता है। कोई शिवकी पूजा करते हैं। कोई विष्णुकी। कोई निर्विकार निर्विशेष ब्रह्मकी सत्ताको स्वीकार करते हैं। भिन्न २ मतको मानकर भी हमलोग एक ही साथ घरमें रहते हैं। कोई सगुण परमात्माकी उपासना करता है कोई निर्गुण परमात्मा की।

मैंने संस्कृतमें परिश्रम किया है। मुझे अपनी तैत्तिरीय संहिता सस्वर कण्ठस्थ है। यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि कोई सज्जन ऐसा न समझें कि वेदोंके विषयमें यों ही कह रहा हूँ।

स्वामी दयानन्दका वेदार्थ ठीक है

वेद मन्त्रोंका अर्थ करते समय स्वामी दयानन्दजी महाराज ने जो आध्यात्मिकादि त्रिविध प्रक्रियाओं में अर्थ किया है वह ठीक ही किया है। इसकी पुष्टिमें मैं एक दृष्टान्त उपस्थित करता हूँ। बृहदारण्यकोपनिषद में कथा आयी है कि एक समय देव, मनुष्य और असुर प्रजापति के पास गये और उन लोगोंने कहा कि हम लोगों को उपदेश दीजिए। प्रजापति ने इन तीनोंके लिए 'द' का उपदेश किया।

प्रजापति ने देवों से पूछा कि इसका अभिप्राय समझ गए? उन्होंने कहा कि हाँ महाराज समझगए; प्रजापतिने पूछा कि क्या समझे? तब उन्होंने उत्तर दिया — आपने हमें 'दान्ता भवत' इन्द्रियोंका दमन करो हमारे लिए यह उपदेश दिया है। तदनन्तर मनुष्योंसे पूछा कि तुमने क्या अभिप्राय समझा? मनुष्योंने कहा कि 'दत्त' दान करो हमने आपके 'द' का यह अभिप्राय समझा है। उसके पश्चात् राक्षसोंसे पूछा कि तुमलोग क्या समझे हो? उन्होंने उत्तर दिया। 'दयध्वम्' दया करो।

आगे यहाँ यह भी समझना चाहिए कि देव, मनुष्य, असुर यह सब कोई पृथक नहीं हैं अपितु मनुष्य ही हैं मनुष्योंमें जो दान्त हैं, इन्द्रियों को वशमें करते हैं वे देव कहाते हैं और दान करते हैं वे मनुष्य होते हैं और जो हिंसा आदिमें तत्पर रहते हैं वे असुर कहाते हैं अतः हिंसा न करनेका उपदेश दिया है।

इस आख्यानमें केवल एक 'द' का अर्थ तीन प्रकारसे किया गया है। भिन्न २ व्यक्तियों के लिए भिन्न भिन्न अर्थ किए गए हैं। उसी प्रकार वेद मन्त्रोंके अर्थ तीनों प्रकार से होते हैं। यह सर्वथा प्राचीन परम्पराके अनुसार है। जो सायणाचार्यजी ने यज्ञपरक अर्थ किया है उसका अर्थ यह नहीं कि वेदमन्त्रोंका उतना ही अर्थ होता है अपितु श्री सायणाचार्यके अर्थ यज्ञपरक हैं। उसी प्रकार 'इषे त्वोर्जे' मन्त्रका अर्थ जहाँ यज्ञपरक है वहाँ अध्यात्मपरक भी है। स्वामीजी महाराजने जिन मन्त्रोंके अर्थ आध्यात्मिक किए वे ठीक ही हैं।

इसमें जो इषे त्वा मन्त्रका देवता शाखा बताते हैं सो ठीक नहीं; क्योंकि दर्श पौर्णमासमें शाखाछेदन में इस मन्त्रका विनियोग है न कि शाखा देवता है। इसमें यह भी हेतु है इषे त्वार्जे मन्त्रका विनियोग विकृति यागों में अनेक स्थानोंपर इषे त्वार्जेति बर्हिरादत्त इत्यादि प्रमाणों से अन्य विषयों में भी है। शाखामें ही है यह बात नहीं। शाखामें विनियोग होना और शाखा देवता होना एक बात नहीं। वेद जीवन की सब समस्याओं का हल करता है इसलिये वेदमन्त्रों का अर्थ अध्यात्मपरक होना स्वाभाविक है। स्वामी जी महाराजने ऐसा करके वास्तवमें बड़ा उपकार किया। जो लोग यज्ञपरक अर्थ समझना चाहें वे यज्ञपरक समझें और जो अध्यात्मपरक समझना चाहें वे अध्यात्मपरक समझें।

संस्कृत राष्ट्रभाषा होनी चाहिए

अन्तमें उपसंहार करते समय मैं यह कहना चाहता हूँ कि देशकी राष्ट्र भाषा संस्कृत होनी चाहिये। क्योंकि जब माता ही जीवित हैं तब दुहिताकी पूजा करनेकी क्या आवश्यकता? अभी माता ही काम करनेमें समर्थ है। हम सब मिलकर संस्कृतको राष्ट्र भाषा बनावें। अधिकारी वर्ग विद्वत्परिषद्को समय दें। मैं अधिकार पूर्वक कहता हूँ कि संस्कृत भाषा केवल १० वर्षोंमें ही प्रचलित हो सकती है, इसको थोड़े कालमें सरल बनाया जा सकता है। भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिसे भी हम लोगोंका परम कर्तव्य है कि हम लोग संस्कृतको राष्ट्र भाषा बनावें। इसके लिए सभीको तत्परतासे काम करना चाहिये। जब जनता इस बातको अपना लेगी तब अवश्य ही संस्कृत भाषा राष्ट्र भाषा हो जायगी।

—०—

साहित्य-समालोचना

आर्यपञ्चांग—

सम्पा० श्री शिवानन्दजी नैष्ठिक ब्रह्मचारी। मूल्य दस आने

पता—आर्यपञ्चाङ्ग कार्यालय, शाहदरा, दिल्ली

यह पञ्चांग निःसन्देह आर्य जगत्की एक कमी को पूरा करता है। ब्रह्मचारीजी का यह काम बड़ा महत्त्वपूर्ण है। विषयोंके क्रम सुन्दर ढगसे रखे गये हैं। आर्योंके पर्वोंकी सूची, वैदिक १६ संस्कारोंके समय जाननेका चक्र, दैनिक लग्न-सारिणी और साथ ही भारत सरकार के अवकाश आदि सभी उपयोगी विषय दिये गए हैं।

हलचल-भजनावली—

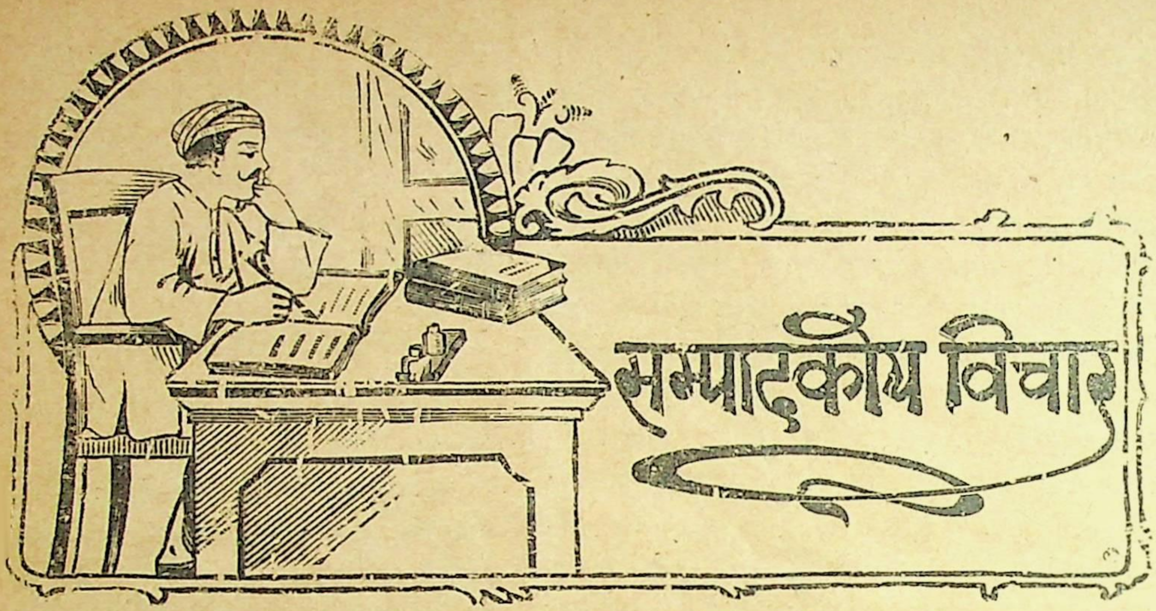
सम्पादक तथा प्रकाशक—मुरलीधर शिवहरे, इन्दौर

इसमें आजकल की चलती तर्ज़ोंपर अच्छे धार्मिक भजन दिए गए हैं। भजनप्रेमी लाभ उठावें। मूल्य ३ आने

सम्मति तथा शुभ कामना

वेद वाणी यथा नाम तथा गुण है इसका प्रत्येक वैदिक धर्मीको स्वाध्याय करना चाहिए। मेरी हार्दिक शुभ कामना है कि परमात्मा इस पत्रको शीघ्र ही कल्याण के बराबर उन्नतिशील बनावें।

निवेदक—खेमचन्द आर्य, मन्त्री आर्यसमाज, कोसीकलां



वेद और ईश्वर का सम्बन्ध

इसमें सन्देह नहीं, वेदके ईश्वरीयज्ञान होने की धारणा सामान्य संसारी जनोंको एकदम समझ में नहीं आती। इसका कारण शताब्दियों से शुद्ध वैदिक परम्परा का लुप्त हो जाना है। इस लिये इस विषयमें अनेक विध धारणाओं, दूसरे शब्दों में अनेक वादों वा भिन्न भिन्न मतों की सृष्टि हुई। इतना तो स्पष्ट है कि वैदिक धर्मियों को छोड़कर समस्त संसार वेदसम्बन्धी उपर्युक्त धारणा मानने को तैयार नहीं, इसके कारण यद्यपि अनेक कहे जा सकते हैं, पर मुख्य कारण जिसमें (हाथी के पांव में सबका पांव) सब कारण आ जाते हैं, यह है कि सबसे पहले संसार ईश्वर की सत्ता को ही स्वीकार नहीं करता ईश्वरकी सत्ता स्वीकार करने से हमारा अभिप्राय उस दैवी चेतनशक्ति के गुणों को विवेचनात्मक रीतिसे विश्लेषण करके स्वीकार करना है, जिसकी यह सब रचना है। ईश्वर के एक एक गुणको लेकर उस पर विचार करने से इस विषय के आधे प्रश्नोंकी समस्या हल हो जाती है। ईश्वर है तो किसी न किसी ऐश्वर्य (वस्तु पदार्थ) का ही तो ईश्वर (स्वामी) होगा, स्व नहीं तो स्वामी कैसा? यदि कार्य वस्तु स्वयं नहीं बन सकती तो दृश्यमान कार्य जगत् को बनाने वाला वह ईश्वर ही हो सकता है। दूसरे को तो उसके पूर्णतया समझने की शक्ति भी दृष्टिगोचर नहीं होती, बना सकना तो एक ओर रहा!

जब स्रष्टा है तो वेत्ता स्वयं ही है। उसमें उसकी व्यापकता अर्थात् सर्वव्यापकता-सर्वान्तर्यामित्व-सर्वाधारत्व-सर्वेश्वरत्वादि गुण स्वयं सिद्ध हैं। यदि यह स्वयं दूसरी शक्ति के आश्रय पर है तो उपर्युक्त सब कार्य कर ही कैसे सकता है? अतः अज, अनादि, अनुपम निर्विकार, अनन्त, मृत्यु-रहित, अभय, नित्य, पवित्र आदि गुण होने ही चाहियें। आकार में आनेवाला इस विशाल सृष्टि की रचना कैसे करेगा? सत्ता और चेतनता के होते हुये आनन्दमय गुण होना भी अनिवार्य है, अन्यथा अनेक जन्म-जन्मान्तरों की कर्मवासनाओं के द्वारा संसार में सुख दुःख का उपभोग करते हुए जीवों की शरण वा अन्तिम शान्ति का धाम क्या होगा? जब हम इन गुणों से विशिष्ट उस परमदेव ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करलें तो तीन मुख्य सत्तायें हमने स्वयं ही स्वीकार करलीं, क्योंकि उपर्युक्त गुण इन तीनों 'ईश्वर-जीव-प्रकृति' की सत्ता को मानने से ही गतार्थ हो सकते हैं। जब हमने आधारभूत इन तीन पदार्थों को मान लिया, जो हमें मानने ही पड़ते हैं, ऐसी दशा में इन तीनों के परस्पर सम्बन्ध को भी हमें जानना आवश्यक होगा। आधुनिक संसार प्रायः करके प्रकृति (मैटर) तथा उसके नियमों को तो मानता है, चाहे वह किसी भी रूप में मानता हो, मानता अवश्य है, पर ईश्वर से इन्कारी (नकारी) होने में उसे कुछ भी सङ्कोच नहीं होता। चाहे युक्ति प्रयुक्ति उपस्थित होने पर यह धारणा टिक न सकती हो। ईश्वर से इन्कारी होने वाले मन में 'ईश्वरीय ज्ञान' वेद के विषय में इन्कारी होना कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं, कारण ही नहीं तो कार्य कैसा !!

"गतानुगतिको लोकः" संसार में अधिक समुदाय निजबुद्धि वा विवेचना से काम न लेकर केवल अनुगामी होने की रुचि रखते हैं, क्योंकि इसमें उन्हें अपेक्षाकृत सुगमता प्रतीत होती है। यही कारण है कि वर्त्तमान भारत निज प्राचीन वैदिक साहित्य, संस्कृति, सभ्यता वा आदर्शों को थोड़ा नहीं, अपितु बहुत दूर तक भूल चुका है। अनीश्वरवादिता की प्रचण्ड आंधी ने जाति और देश की जड़ों को हिला दिया है। ऐसी अवस्था में 'ईश्वरीय ज्ञान' वेद के विषय में सर्व साधारण में शङ्कायें बनी रहना या हृदय का पूर्ण सन्तोष न होना स्वाभाविक ही है॥

हमारे समस्त प्राचीन दर्शनशास्त्र और ऋषिमुनि सामूहिक रूपेण 'ईश्वर-जीव-प्रकृति' इन तीनों की सत्ताका विशद निरूपण करते हैं। उनमें हमें सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल सभी सम्भवनीय शङ्काओं के उत्थानों तथा समाधानों द्वारा इस विषय की विवेचना मिलती है। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के आरम्भिक दो नियमों द्वारा बहुत ही उत्कृष्ट रीति से इस बात को दर्शाया है—

"सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल परमेश्वर हैं।१।"

"ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।२।"

इन दोनों नियमों में ईश्वरके स्वरूपका वर्णन अत्यन्त उत्तम रीति से कर दिया गया है।

ईश्वर की सिद्धि में प्रमाण वा युक्तियां हम इसी लिये उपस्थित नहीं कर रहे हैं कि यह विषय वैज्ञानिकों में अब मान्य हो गया है। योरुप के बड़े २ विज्ञान-वेत्ताओं ने भी परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार कर लिया है, चाहे वह अपने यथावत् रूप में न हो।

हमारा अभिप्राय इतना ही है कि पाठक महानुभाव उपर्युक्त 'सच्चिदानन्दस्वरूप निराकार' इत्यादि गुणविशिष्ट ईश्वर को जानकर और मानकर ही प्रकृत विषय के विचार में प्रवृत्त हों। साथही जीव और प्रकृति के विषय की धारणा भी पूर्व ही निश्चित कर लेनी अनिवार्य है। तभी "ईश्वरीयज्ञान वेद" का यह विषय हृदयङ्गम हो सकता है॥

जब पूर्वोक्त प्रतिपादन से यह स्पष्ट है कि जगत् का कर्त्ता=निमित्तकारण परमेश्वर अनादि है और ज्ञान का भण्डार है, तो उसका वेद के साथ क्या सम्बन्ध है, यह आकांक्षा पाठकों के हृदय में होनी स्वाभाविक है। जिज्ञासुओं की आकांक्षा-निवृत्ति के लिये शास्त्रकारों के वचन संक्षेप से एक दो ही दर्शाना पर्याप्त होगा—

(१) शास्त्रयोनित्वात् (वेदान्त सू० १।१।३)

इस सूत्र में व्यासमुनि ने ब्रह्म को शास्त्र का कारण माना है। इसके भाष्य में श्री० स्वामी शङ्कराचार्यजी महाराज लिखते हैं:—

महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति।

अर्थात् सर्वविद्यामय ऋग्वेदादि का सर्वज्ञ परमात्मा के बिना कोई कारण नहीं हो सकता।

(२) योगभाष्य में भी व्यासमुनि कहते हैं—

एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्त्वे वर्त्तमानयोरनादिः सम्बन्धः

अर्थात् वेद और ईश्वर का अनादि सम्बन्ध है।

—०—

संस्कारविधि पर किये गये आक्षेपोंके सम्बन्धमें मेरा वक्तव्य

श्री० पण्डित गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय मन्त्री आर्य सार्वदेशिक सभा ने संस्कारविधिके दो मन्त्रोंके विषयमें सार्वदेशिक' पत्रमें लिखा था कि उन्हें निकाल देना चाहिए। उनके आक्षेपोंका उत्तर श्री प० जयदेवजी विद्यालंकार तथा श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराजने लिखित तथा 'आर्य मित्र' आदि पत्रों द्वारा बड़े परिश्रम और योग्यतासे दिया। इसपर भी श्री उपाध्यायजीका सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने २ सितम्बर १९४८ के 'आर्यमित्र' में पुनः अप आक्षेप छपवाये हैं।

परोपकारिणी सभा अजमेरके गत ८ मार्च १९४८ अधिवेशनके निश्चय सं० ८ के अनुसार मुझे भी उपर्यु दोनों स्थलों के विषयमें असली हस्तलेखोंको अजमेरमें दे कर अपना वक्तव्य देनेके लिये कहा गया। तदनुसार २७ सितम्बरसे ८ अक्टूबर तक अजमेरमें रहकर संस्कारवि के दोनों हस्तलेखों, असली रफ़ कापी तथा संशोधित कापीको सावधानता और सूक्ष्म दृष्टिसे देखा। और

विस्तृत वक्तव्य (लगभग २० पृष्ठ) वयोवृद्ध श्री मन्त्री जी परोपकारिणी सभा अजमेरको भेजा जो उक्त सभासे ही मिल सकेगा, अति संक्षेपसे मैं अपने विचार यहां भी उपस्थित करता हूँ।

'अयन्त इध्म आत्मा०' पर विचार

इस मन्त्रके विषयमें उपाध्याय जी के आक्षेपोंका सार यह है (आर्यमित्र, २ सितम्बर १९४८) —

शंका—(१) 'असली कापीमें 'अयन्त......' मन्त्र समिधाओंकी आहुतियोंके सम्बन्धमें नहीं है'।

(२) 'असली कापीमें अन्य संशोधन हैं, यह मन्त्र बढ़ाया नहीं गया'।

(३) 'प्रेस कापी में केवल हाशिये पर है, और यद्यपि उसी लेखकके हाथका है, फिर भी पीछेसे लिखा गया है'।

(४) 'उसी ने १, २, ३ संख्या भी डाली होगी'। उसीने अर्थात् लेखक ने।

समाधान—ऊपरके तीनों कथन सर्वांशमें ठीक हैं, पर इससे श्री उपाध्यायजीकी बात सिद्ध नहीं होती। किञ्चित् ध्यान देकर पढ़ें।

(१) सबसे प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि असली कापी—असली रफ़ कापी है। अर्थात् संवत् १९३२ के प्रथम संस्करणका संशोधित रफ रूप है। क्योंकि इसकी प्रतिलिपि शुद्ध करके जो तय्यार की गई, वह प्रेस कापी है। उसमें पृष्ठ ४७ तक ऋषि दयानन्दके हाथका काली स्याही का संशोधन बराबर मिल रहा है। इन दोनों हस्तलेखों को अगस्त सन् १९३६में मैंने बढ़िया कागज़में लपेट कर ऊपर नीचे गत्तोंके फीतेसे बाँधा था, और एकपर 'असली कापी' और दूसरेपर 'प्रेसकापी' शब्द लाल स्याहीसे लिखदिये थे।

(२) 'अयन्त इध्म०' मन्त्र प्रेस कापीके पृष्ठ १५ पर है अर्थात् ३२ पृष्ठ और आगे (पृ० ४७) तक ऋषि के हाथका संशोधन व लेख बराबर विद्यमान है। पृष्ठ १५ के हाशियेपर अन्तिम पङ्क्तिमें 'अयन्त इध्म०' मन्त्रसे आगे "इस मन्त्रसे एक" इतना तथा 'समिधाग्निं०—' के आगे "इससे और सुसमिद्धाय०... इस मन्त्रसे अर्थात् इन दोनों मन्त्रोंसे दूसरी" ऐसा पाठ है। 'तं त्वा०' के आगे 'इस मन्त्रसे तीसरी समिधाकी आहुति देवे' यह सब पाठ ऋषि दयानन्द के अपने हाथ का है, जो पृष्ठ ४७ तकके संशोधनसे सर्वथा मिलता है। ४७ पृष्ठसे आगे इस कापीपर ऋषिके हाथका संशोधन नहीं है।

यहां यह ध्यानरहे कि हमने संस्कारविधिके संशोधनोंके लेखोंको ऋषि दयानन्दके अपने हाथसे लिखे गये पत्रों के लेखोंसे बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे मिलान करके पूर्णतया निश्चय किया है कि कौनसा संशोधन लेखकका है और कौनसा ऋषिके अपने हाथका है। ऋषिके हाथके संशोधनोंकी पहचान इतनी सूक्ष्मतासे की है कि उसमें अब आशङ्काके लिए स्थान नहीं है। शोकसे कहना पड़ता है कि उपाध्याय जी ने संस्कारविधि की कापियोंको देखते समय इस बात पर ध्यान न दिया कि कौन सा संशोधन ऋषि का है और कौन सा लेखक का। अन्यथा इतना विवाद ही न बढ़ता।

(६) असली रफकापीमें जो काली पैंसिलका बहुतसा संशोधन वा परिवर्धन है, वह ऋषि के अपने हाथ का है। यह सम्पूर्ण कापी निश्चय ही जोधपुर में १३ मई सन् १८८३ से २६ सितम्बर १८८३ तक के समयमें लिखी गई और सम्पूर्ण संशोधित (काली पैंसिल से) हुई। और इसी कालमें इसकी प्रतिलिपि अर्थात् प्रेस कापी के पृष्ठ १-४७ तक का संशोधन ऋषिने अपने हाथसे काली स्याही से किया। पृष्ठ ४७ से आगे की प्रेस कापी इन चार मास में ही लिखी गई, यह कहना कठिन है, पाठक देखें—

(अ) जीवन चरित्र देवेन्द्रबाबू कृत आर्य साहित्य मण्डल अजमेर का छपा पृ० ६९९—

'८ बजेसे वेदभाष्यका लिखना प्रारम्भ करते, और ११ बजे तक उसीमें व्यस्त रहते। तत्पश्चात् सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के प्रूफ संशोधते और पत्रोंके उत्तर लिखते'॥

(इ) आषाढ़ वदि १३, रविवार संवत् १९४० को पुनः संशोधन करके छपवाने का आरम्भ हुआ (संस्कारविधिभूमिका)॥

(उ) ऋषिके पत्र और विज्ञापन — रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर का छपा, पृष्ठ ४८३—

'और अबके संस्कारविधि बहुत अच्छी बनाई गई है, और अमावास्या तक बन चुकेगी'।

ऋषिने यह पत्र भाद्र बदी ५, सं० १९४० को मुंशी समर्थदान को लिखा था अतः यहां अमावस्या से अभिप्राय भाद्रपद की अमावस्या का है।

(ऋ) उपर्युक्त पुस्तकके पृष्ठ ५१२ पर लिखा है—

'आश्विन बदी ८ सोमवार संवत् १९४० को सरकार-संस्कारविधिके पृष्ठ १ से ४७ तक भेजे हैं पहुँचे होंगे, और पहुँचनेकी रसीद भेज देना'।

इन चारों प्रमाणोंसे सिद्ध है कि संस्कारविधिका संशोधन २ मास २ दिन में जोधपुर में हुआ। यह भी निश्चित है कि उक्त चार मास में स्वामीजी महाराज जोधपुरमें ही रहे कहीं बाहर भी नहीं गये, तथा प्रेस कापी १ से ४७ पृष्ठ तक महाराज संशोधन करके छपने के लिए प्रेस में भेज चुके थे।

[४] पाठक असली रफ कापी तथा प्रेस कापी दोनों हस्तलेखों की पृष्ठ संख्या पर ध्यान देवें—

(अ) असली कापी में पृष्ठ १ से ४ तक भूमिका तथा प्रारम्भ के श्लोक हैं। आगे पुनः नई संख्या १ से ४ में ८ प्रार्थना मन्त्रों के अर्थ मात्र हैं—मन्त्र नहीं हैं। पुनः नई संख्या चलती है। १ से १० पृष्ठ तक में सामान्य प्रकरण समाप्त हुआ है, जिसमें स्वस्तिवाचन और शान्तिप्रकरण के मन्त्र नहीं हैं, इतना अंश छूटा हुआ समझना चाहिए। आगे गर्भाधान संस्कार से गृहाश्रम की समाप्ति तक १८४ पृष्ठ संख्या बराबर जाती है (१५९में कुछ पृष्ठ परिवर्द्धित हैं) आगे पुनः पृ० १ से ४३ में वानप्रस्थ से अन्त्येष्टि तक का विषय है।

(इ) प्रेस कापी में पृष्ठ १से १९ तक सामान्य प्रकरण समाप्त होता है। आगे पृष्ठ १७२ तक निरन्तर ठीक संख्या जाती है।

अब यहां कहना यह है कि असली कापी पुंसवन संस्कार पृष्ठ १३ पर लिखा है—

'पृष्ठ ३ से १९ में पृष्ठ में समाप्ति पर्यन्त कहे प्रमाणे विश्वानि देव०' इत्यादि चारों वेदों के मन्त्रोंसे यजमान तथा पुरोहित ईश्वरोपासना करें'। इसमें ''अंकित पाठ ऋषि दयानन्द के अपने हाथ का काली पैन्सिल का है। इससे यह स्पष्टसिद्ध होता है कि कम से कम पुंसवन संस्कार पृ० १३ लिखते समय प्रेस कापी पृ० ३— १९ तक का समान्य प्रकरण लेखक द्वारा लिखा तथा ऋषि दयानन्द द्वारा काली स्याही से संशोधित हो चुका था। असली कापी में निर्दिष्ट पृष्ठ संख्या ३—१९ प्रेसकापी की ही है, क्योंकि असली कापी में ३—१९ पृष्ठ संख्या है ही नहीं। इतना ही नहीं अपितु आगे भी असली कापी के पृष्ठ १६, २९, ३२, ३४, ४१ में '३—१९ पर्यन्त विधि करके' ऐसा स्पष्ट लेख मिलता है। हमारा 'अयन्त इध्म आत्मा०' मन्त्र विषयक सब पाठ इन्हीं ३-१९ पृष्ठों में है, वह पृष्ठ १५ पर है।

(५) असली रफ कापी में 'अयन्त इध्म आत्मा०' इस मन्त्र से समिधा डालने का विधान आगे के संस्कारों में निम्न प्रकार मिलता है—

(क) असली कापी पृष्ठ २०—'...आसन पर बैठ के (अयन्त इध्म आत्मा०) पृष्ठमें लिखे मन्त्रसे वेदीमें चन्दन की समिधा ...करे'।

(ख) असली कापी पृष्ठ ४७ में 'अयन्त इध्म' इत्यादि चार मन्त्रोंसे समिदाधान...... ।'

(ग) असली कापी पृ० १०४में पृ० में......(ओं अयन्त इध्म) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान......॥'

[घ] असली कापी पृ० ११८ 'पृ० में अग्न्याधान [ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौं०] इस मन्त्रसे करे [ओं अयन्त इध्म०] इस मन्त्रसे समिदाधान करके......।'

[ङ] असली कापी पृ० १२१ में 'पृष्ठ में लिखे प्रमाणे [ओं अयन्त इध्म०] इस मन्त्र से समिधा होम दोनों जने करके'।

[च] असली कापी पृष्ठ ७ [वानप्रस्थाश्रम] '[अयन्त इध्म०] इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान करके......।'

इन छः स्थलों में [अयन्त इध्म] मन्त्र से समिदाधान का विधान असली कापी के हस्तलेखमें भी स्पष्ट मिलता है। प्रेस कापी के हस्तलेखमें तो है ही। यदि असली कापी में न होता, तब भी कोई कह सकता था कि अजी पीछे मिला दिया गया है। प्रथम उद्धरण से यह स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द असली कापी के २० पृष्ठ लिखे जाने तक प्रेस कापी के पृष्ठ १५ में अपने हाथ से संशोधन वा परिवर्द्धन कर चुके थे। इससे यह स्पष्ट है कि असली कापी के सामान्य प्रकरण लिखे जानेके तत्काल पश्चात् उतने भाग की प्रेस कापी तैयार कर के उसीमें ऋषि ने अपने हाथ से [अयन्त इध्म] मन्त्र से समिदाधान का विधान किया [जो पहले नहीं किया था] इसी प्रेस कापी के पाठ और पृष्ठों का निर्देश असली रफ कापी के पुंसवन आदि संस्कारों में किया, इस में किसी भी प्रकार का संदेह शेष नहीं है। इससे 'एक एक मन्त्र से एक एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें' यह असली कापीका 'संशोधित रूप' है यह शंका भी सर्वथा कट जाती है, क्योंकि आगे चार मन्त्रों से ३ समिधाओंका विधान है जो अनेक स्थलों में है जो असली कापी में मिलता है। [क्रमशः

सम्मति तथा शुभ कामना—वेदवाणी पत्रिका आ[र्य] धर्म, आर्य संस्कृति तथा वैदिक सिद्धान्तों की परिपोषक [है।] वस्तुतः इस पत्रिकासे जनहितकी आशा है।

—सुरेन्द्रशास्त्री, प्रधान, आर्य प्रतिनिधिसभा, युक्तप्र[ान्त]

दूसरे वर्ष का विशेषांक

❁ सामवेद अंक ❁

वेद प्रेमियों को यह जानकर हर्ष होगा कि वेदवाणीके दूसरे वर्ष का विशेषांक 'सामवेद अंक' के रूप में बड़ी सुन्दरतासे प्रकाशित किया जावेगा। इसमें सामवेद और उसका उपासना कांड परकभक्तिरससे पूर्ण हिन्दी अनुवाद स्पष्ट तथा शुद्ध अक्षरों में वेदप्रेमी जनता के लिए समर्पित किया जावेगा। केवल 'सामवेद अंक' का ही मूल्य ४) होगा'। ४।।) वार्षिक मूल्य देकर ग्राहक बनने वालों के लिए वर्ष भर तक वेदवाणी के अतिरिक्त यह विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा। यह विशेषांक परिमित संख्या में छप रहा है। ४) में अर्थ सहित सामवेद कहीं से प्राप्त नहीं हो सकता। साधारण तथा निर्धन जनता तक कम मूल्य में वेद पहुँचाना ही हमारा लक्ष्य है।

पहलेसे ग्राहक बन जाने वाले व्यक्तियोंको ही 'सामवेद अंक' दिया जावेगा। अतः ग्राहक बननेमें शीघ्रता करें।

सामवेद समालोचना अंक

यह निश्चय किया गया है कि सामवेद अङ्कके निकलनेसे पहले ही पाठकों को सामवेदका समालोचनात्मक परिचय करानेके लिये भूमिकाके रूप में 'सामवेद समालोचना अङ्क' प्रकाशित किया जाय। इसमें निम्नलिखित [विष]यों पर लेख रहेंगे। विद्वानों से प्रार्थना है कि वे कृपया अधोलिखित विषयों में से अपने अभीष्ट किसी एक [विष]य पर संक्षिप्त मौलिक अन्वेषणपूर्ण लेख भेजकर कृतार्थ करें।

१-सामवेदके ऋषि, २-सामवेदके देवता, ३-सामवेदके छन्द, ४-सामवेदके स्वर, ५-सामवेद का गान, ६- ,, की शाखायें, ७- ,, भाष्य, अनुवाद, ८- ,, याज्ञिककर्मकाण्ड ९- ,, में इतिहास १०- ,, और गीता, ११- ,, व विवाह संस्कार १२ ,, मन्त्र संख्या विभाग, १३ ,, में पुनरुक्ति, १४ ,, के ब्राह्मण, १५ ,, की उपनिषदें, १६ ,, के श्रौत गृह्यसूत्र, १७ ,, प्रातिशाख्य, १८ ,, प्रक्षेप, १९ ,, की अनुक्रमणियाँ २० ,, में विज्ञान, २१ ,, अलङ्कार, २२ ,, का उपवेद (गान्धर्ववेद) २३ ,, पर कार्यकरने वाले विदेशी विद्वान, इत्यादि

निवेदक—सम्पादक वेदवाणी, काशी।

आवश्यक निवेदन

अपने ग्राहकों से—

वेदवाणी के स्वाध्यायशील तथा उदार ग्राहकों को, जिन्होंने इसे अपनाकर वेद प्रचार के महान् उद्देश्य की पूर्ति में हाथ बटाया है, उसके लिये धन्यवाद दिया जाता है, और साथ ही उनसे नम्र निवेदन है कि जिस प्रकार उन्होंने इस पवित्र कार्य की गंभीरता और उपयोगिता को परख कर अब तक सहयोग प्रदान किया है वैसे ही वे आगामी वर्ष में भी स्वयं ग्राहक बने रहकर ४।।) रु० वार्षिक मूल्य शीघ्र भेजने की कृपा करें, तथा अपने इष्ट मित्रों और अन्य सज्जनों को भी शीघ्र ग्राहक बनाकर वेद प्रचार के इस पुण्य कार्य में सहयोग करें। वार्षिक मूल्य न प्राप्त होने पर अगला अंक वी०पी० से भेजा जावेगा। कृपया उसे स्वीकार करें।

नये ग्राहक बनने वालोंसे—

कुछ महानुभावों तथा संस्थाओं को वेदवाणी समय समय पर नमूने के लिये भेजी गई है इस सेवासे पूर्ण लाभ उठाकर इसकी उपयोगिताको समझते हुए वे स्वयं ग्राहक बनकर अन्योंको भी ग्राहक बनायेंगे।

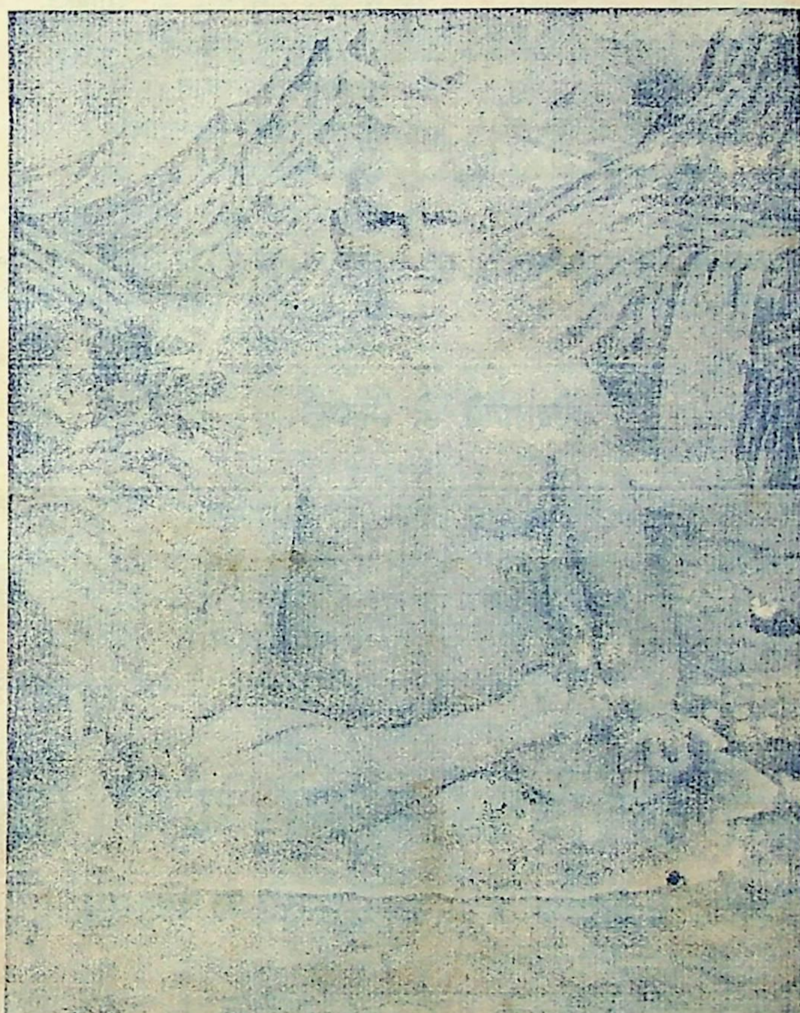
जो सज्जन ग्राहक न बनना चाहें और वी०पी० न लेना चाहें वे वैसी सूचना अवश्य तथा शीघ्र दें।

व्यवस्थापक—वेदवाणी, आदर्श साहित्य मण्डल, जंगमवाड़ी, बनारस।

मुद्रक तथा प्रकाशक—पं० भानुचरण आर्येय, आदर्श साहित्य मण्डल के लिये श्री कृष्ण प्रेस बनारस में छपा।

वर्ष २ ओ३म् अंक २

वेदवाणी



वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती

कार्तिक २००६ वि०	प्रधान सम्पादक—श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु	अवैतनिक	वार्षिक मूल्य
अक्टूबर १९४९ ई०	सम्पादक—प्रो० महेश प्रसाद	,,	भारत में ४ रु० आठ आना
दयानन्दाब्द १२५	स०सम्पादक—श्री क० च० 'राकेश' जी	,,	विदेश में १० शिलिंग ६)
वेद व सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५०	व्यवस्थापक—आनन्द [illegible]		एक प्रति ६ आने

विषय-सूची

वेदवाणी के नियम

१—पत्र प्रतिमास प्रथम तिथि को प्रकाशित हुआ करता है।

२—वार्षिक मूल्य ४॥) हैं जो मनीआर्डर द्वारा अग्रिम भेजना चाहिये।

३—लेख सम्पादक, वेदवाणी के नामसे आने चाहिए। लेख सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा मौलिक हों। उनको प्रकाशित करना, न करना तथा संशोधित करना सम्पादक के अधीन है। अस्वीकृत लेख पोस्टेज प्राप्त होने पर लौटाये जा सकते हैं। लेखोंमें प्रदर्शित विचारोंके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं।

४—वार्षिक मूल्य, विज्ञापन-सम्बन्धी धन तथा पत्र व्यवस्थापक वेदवाणी, आदर्श-साहित्य-मण्डल, १२ जंगमबाड़ी, बनारस के नाम भेजना चाहिए।

ॐ

वेदवाणी

सं श्रुतेन गमेमहि, मा श्रुतेन विराधिषि ।
हम सदा वेदवाणी से संयुक्त रहें, उससे कभी विमुख न हों

वर्ष २] काशी—कार्तिक सं० २००६ वि०, अक्तूबर १९४९ ई० [अंक २

हे देव! करें तेरा पूजन!

ऋषिः—हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । देवता—कः । छन्दः—विराट् त्रिष्टुप् । स्वरः—धैवतः ।

ओ३म् यस्येमे हिमवन्तो महित्वा, यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो, यस्य बाहू, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ऋक्–१०.१२१.४ । यजुः–२५.१२

(यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः आहुः) जिसकी महिमाको यह बर्फीले पहाड़ कह रहे हैं, (यस्य रसया सह समुद्रम्) जिसकी महिमा नदियों सहित यह समुद्र कह रहा है, (इमाः प्रदिशः यस्य बाहू) यह दिशाएँ जिसकी बाहु—तुल्य हैं, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप देवका हम पूजन करें ।

रे मन ! उसका कर चिन्तन !
ऊँचे ऊँचे व्योम–विचुम्बित, शैल–शृंग, उत्तुङ्ग हिमावृत,
अविचल पर्वत हैं महिमान्वित करते जिसका आराधन ।
विरहिन व्याकुल सी सरितायें बढ़ा बढ़ा कर दीर्घ भुजाएँ
गा—गाकर जिसकी महिमाएँ करतीं अविरत आवाहन ।
युग युगके वियोग से विह्वल सागर जिसे पुकारे प्रतिपल
सभी दिशायें फैला आँचल करतीं जिसका अभिनन्दन ।
रे मन ! उसका कर चिन्तन ॥

—श्री० सत्यकाम 'परमहंस'

गौ और उसके दूध आदिका महत्त्व

[लेखक—डाक्टर रामस्वरूप]

भारतमें जब गोमाताका मान था तब आर्यावर्त्त सब देशोंका गुरु था और उच्च शिखर पर था। अब तो योरुप और अमरीकामें गो दुग्धकी नदियां बह रहीं हैं। वहां गौ मान्य है। वहीं बुद्धि, सरस्वती, लक्ष्मी और सभी सम्पत्ति तथा विजय है।

जिस समय भारत में दूधकी नदियां बहती थीं यहां के निवासी हृष्ट पुष्ट वीर बलिष्ठ वा सभी तरहकी सम्पत्तियों से भरपूर थे। अब भी दूध दही मक्खन और घी का अभाव दूर होने से अधिकतर कष्ट दूर हो सकते हैं! गौ वंशकी वृद्धिसे राजा व प्रजा का कल्याण हो सकता है। आजकल यूरोप और अमेरिकामें गौके दूधकी वैज्ञानिक जानकारी ज्यों ज्यों बढ़ती जा रही है त्यों त्यों गौके मान से देशकी विशेष उन्नति होती जा रही है।

आर्य परिवारमें गाय सदासे एक प्रधान और आवश्यक अँग रही है। राजभवन अथवा एकान्तवासी मुनियोंकी कुटियोंमें दोनों स्थानों पर गायका आदर व मान था। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जीने गौ रक्षा के लिए आवाज़ उठाई। प्रोफेसर राममूर्तिने गो रक्षाके लिए पर्याप्त प्रयत्न किया था। श्री पूज्य महात्मा गांधीने गो सेवाके विषयमें अपने विचार अपनी "गो सेवा" पुस्तकमें इस तरह प्रकट किये हैं "मेरी गहरीसे गहरी दो मनो कामनाएं हैं—एक छुआछूतको दूर करना और दूसरी गो सेवा। इन कामनाओं में जब सफलता मिलेगी तब स्वराज्य मिलेगा। इन दोनों की सिद्धिमें मुझे मोक्ष दिखाई देता है। यह अकेला गो सेवाका काम ही स्वराज्यको समीप लाने वाला है। मुझे रह रह कर इस बातका दुःख होता है मैंने गौ रक्षाका काम अपने जीवनके आखरी वर्षों में हाथ में लिया है और दुःखकी बात है कि गाय का दूध छोड़ कर भैंस का दूध पीने की प्रथा सर्वमान्य हो चली है जोकि बच्चों, गर्भवती स्त्रियों, रोगियों, कमजोरों, बुड्ढों और विद्यार्थियोंके लिए अति हानिरक है अब तो भगवान्की दयासे अपना राज्य है। भारत सरकारको जैसी कि इस समय देशकी रक्षाके लिए सेना वा युद्ध सामग्रीकी जरूरत है, फौजके सिपाहियों को मजबूत और वीर बनानेके लिए गौ दुग्ध मक्खन और घीकी उससे ज्यादा जरूरत है। गौ रक्षा ही देशकी हर प्रकारकी उन्नतिका मूल साधन है। हिन्दू शास्त्रोंमें गोमूत्र, गोबर, मक्खन घी तथा दूधकी अपार प्रशंसा है। प्राचीन आर्य लोग इनके गुणोंकी जानकारी पूरे तौर पर रखते थे। विदेशी वैज्ञानिकों [अमेरिका फ्रांस-रूस आदि] ने भी अब सिद्ध किया है और दुनियांको आश्चर्यमें डाल दिया है। कुछ विदेशी वैज्ञानिकोंके विचार दूध व गोबर और गो मूत्रके बारे में निम्न लिखित हैं—

१—इटलीके वैज्ञानिक प्रोफेसर जी. जी. बिगेंड़ने गोबरके अनेक प्रयोग करके सिद्ध किया है कि ताजे गोबरसे तपैदिक, मलेरिया, और हैजे के जन्तु तुरन्त मर जाते हैं। प्रोफेसरका मत है कि प्रारम्भिक अवस्थामें तो गन्धसे ही मर जाते हैं। इटलीमें सनिटोरियममें गोबर का ही प्रयोग किया जाता है। हैजा व अतिसार रोगियों को ताजा गोबर पानी में घोलकर दिया जाता है। जिस तालाबमें हैजेके कीड़े पैदा हो जावें ताज़ा गोबर घोल कर डाला दिया जावे तो रोगजन्तु तुरन्त मर जाते हैं।

२—न्यूयार्क टाईम्स भी लिखता है कि रोग जन्तु नाश करनेके लिए गोमय का बहुत ही महत्त्व है।

३—मद्रासके डाक्टर कींगका कहना है कि अबतो यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गौके गोबरमें हैज़ेके जन्तुओंको नष्ट करनेकी विचित्र शक्ति है। मिर्गी, हीस्टीरिया, न्यूरिसथिनिया, चित्त भ्रम, मस्तक चक्र, मूर्छा, खुजली, चकते, पित्त, जल जाने, फोड़ा फुन्सी तथा कोढ़ में लाभदायक है।

४—बलफास्टके प्रोफेसर सरमस तथा अलस्टरके प्रोफेसर क्रूक ने गौमूत्र की बड़ी महिमा गाई है। गोमूत्र में रक्त में रहने वाले दूषित कीटाणुओं को नाश करनेकी

सक्ति होती है। यह हृदय रोग, गठिया, टी. बी., पाण्डु रोग, अर्श, त्वचा रोग, जिगर, तिल्ली तथा खुजलीमें लाभ दायक है।

५—डाक्टर हाफकिन् प्लेग के टीकेके आविष्कारक कहते हैं कि गाय का घी प्लेग के दिनों में प्रातः प्रत्येक व्यक्ति का इस्तेमाल करने से प्लेग के कीटाणु तुरन्त मर जाते हैं तथा प्लेग नहीं होता।

६—रूसके प्रसिद्ध डाक्टर फिलिप माखन निकाले हुए दूध की एक से तीन छटांककी मात्रा पुराना अतिसार तथा हिस्टीरियामें लाभदायक बतलाते हैं।

७—डाक्टर स्काट डनकन साहबका अनुभव है कि डायबिटीजके रोगीको केवल गायका दूध सेवन कराने से २४ घण्टेमें उसका सात सेर पेशाब तथा १९३ ग्रेन चीनी कम हो गई।

८-१९ सवीं सदीके मध्य सन् १८८८ में फ्रान्स में पासचर संस्था के बैक्टीरिया यानी कीटाणु विशारद लूई-पासचर-साहबने गायके दूधके गुणों का नया आविष्कार किया। डाकक्टर मकनिकाफ प्रोफेसर पासचर संस्था फ्रांस "नेचर ओफ मेन" पुस्तकमें लिखते हैं कि मनुष्य तीनसौ वर्ष तक जिन्दा रह सकता है। अगर मनुष्य दीर्घ आयु मांगना चाहते हैं तो गौ के दूध, दही, मलाइ, मक्खन तथा पनीरका प्रयोग करें। इससे स्वास्थ्य बना रहता है तथा बहुत सी बीमारियां जैसे इसहाल, टाइफाइड हैजा, तपेदिक, कमजोरी, नर्व, तथा आंतोंके मरजों का बहुत फायदा पहुँचता है।

९-प्रोफेसर गेटी अपनी पुस्तक विज्डम ऑफ दी एन्शैन्ट ब्राह्मन्समें लिखते हैं कि हम ३० वर्ष संस्कृत पढ़ने पर भी प्राचीन समयके ग्रन्थोंकी रचना तो दूर रही उन्हें समझने की योग्यताभी नहीं रखते। उस कालमें गौ के दूध, माखन तथा फल का प्रयोग करते थे—तथा शुद्ध वायु में बैठ कर सात्विक भोजन से मेधा बुद्धि बढ़ाते थे।

१०—श्रीयुत मैकालमका गौ के दूधकी जांचका नतीजा जिसने सारे सभ्य संसारका विचार बदल दिया है मनुष्यकी जंगली अवस्थासे उठानेके इतिहासमें गोपालन का मुख्य हाथ है। दुनियामें शरीरकी मानसिक और आत्मिक उन्नतिमें बढ़ती हुई वही जातियां हैं जिनका गो पालन तथा खेती पर आधार है। गाय एक अद्भुत रसायनशाला है। गौके ही प्रताप से युरोप तथा अमरीका ने इतनी उन्नति की है।

११—डाक्टर वार्नियर मैकफैडन अपनी पुस्तक मिरेकल ऑफ मिल्क में लिखते हैं कि गौ के दूधमें स्वास्थ्य के बनाये रखने और रोगी हो जाने पर स्वास्थ्यको फिरसे ठीक ठीक अवस्थामें ले आनेकी अद्भुत शक्ति है। अगर तुम हलके दुबले हो तो गौका दूध तुम्हारी कमी को पूरा कर देगा अगर तुम भारी व मोटे हो गये हो तो गौ का दूध तुम्हें साधारण दशा में ला देगा। अगर तुम कमजोर हो और तुम्हारा स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जा रहा है तो गौ दूधका सेवन तुम्हारे शरीरमें शक्तिका सञ्चार कर देगा। यदि तुम्हारे शरीरमें किसी भी प्रकारकी कोई बीमारी है तो गौ दूधका सेवन रोग रहित कर देगा। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि जो रोगी एक दो दिनका व्रत रख कर केवल दूधका एक या दो सप्ताह तक विधि पूर्वक गौके दूधका सेवन करे तो उसकी नई पुरानी बीमारी पर सफलताके साथ काबू पाया जा सकता है, आगेको कभीमार भी नहीं होगा और रोग रहित होकर बीमारियोंसे मुकाबला करनेकी शक्ति बढ़ जाती है। शारीरिक व मानसिक दुःखों की निवृत्तिके लिए गौ का दूध अमृत है। शरीर का और चेहरेका रंग निखर आता है जो कि शक्ति उत्पन्न करने वाली औषधियों से कभी भी नहीं हो सकता है। गाय के दूध के गुणों और भैंसके दूधके अवगुणों पर फिर कभी ध्यान दिलाऊंगा।

—०—

वैदिक रम्य गृह

[लेखक—किशोरी लाल गुप्त एम० ए०, साहित्य-वाचस्पति सिद्धान्त शास्त्री, काव्यतीर्थ, वैदिक आश्रम, अलीगढ़।]

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण। गृहानेमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥

अथर्व० काण्ड ७, सूक्त ६०, मन्त्र १,

अन्वयः—

ऊर्ज बिभ्रत्, वसुवनिः, सुमेधाः, अघोरेण, मित्रियेण, चक्षुषा, सुमनाः, वन्दमानः, गृहान् एमि, रमध्वम् मत् मा बिभीत।

शब्दार्थः—

उर्जम्=भोजन सामग्री, बल। वसुवनिः=धन सम्पत्तिका उचित वितरण करने वाला। सुमेधाः=सुन्दर बुद्धि और सुविचारवान्। सुमनाः=सुन्दर मनवाला मनन शील। वन्दमानः=वन्दन शील, विनम्र। अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा=सौम्य स्नेहयुक्त मित्रदृष्टिसे। गृहान् एमि=घरोंको प्राप्त करता हूँ घरबारके लोगोंमें प्रवेश करता हूँ। रमध्वम्=रमण करो सुखचैनसे जीवन यापन करो। मत् मा बिभीत=मुझसे भय मत करो, निर्भय रहो।

व्याख्याः—

यूरोपके विद्वानोंकी, विशेषतया इतिहास वेत्ताओंकी, वेदोंके विषयमें बड़ी भ्रान्ति-पूर्ण धारणा रही है। कारण स्पष्ट है। वे विकास-वादी हैं। वेदोंके प्राक्-ऐतिहासिक कालमें सभ्य सुसंगठित समाजकी विद्यमानता उनकी आधुनिक परिमार्जित बुद्धिमें समाही कैसे सकती है? उनकी दृष्टि में तो वैदिक ऋषियों का महत्त्व वनचर गड़रियों से बढ़चढ़कर हो ही नहीं सकता। फिर वैदिक ऋचाओंको भोले-भाले गड़रियों की बलबलाहट यदि वे समझते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

पाठकप्रवर! मंत्रकी आत्मामें, उसके गम्भीर आशयों में, गहरा प्रवेश कीजिये, तब आपको पता चलेगा कि वैदिक कालीन गृह-व्यवस्था कितनी रम्य, [illegible], स्नेहमय और सुख-समृद्धिसे परिपूर्ण थी। आइये आपको उस प्राचीन स्वर्ण-युगके गार्हस्थ्य जीवनका यत्किञ्चित् परिज्ञान करानेका प्रयत्न करें। तब आपको पता चलेगा उस समयके असभ्य कहलाने वाले गड़रिये आधुनिक सुसभ्य-समाजसे कितने अधिक शान्त और सुख-समृद्धि-मय जीवन बिताते थे। आज जिधर देखिये उधर अशान्त वातावरण दृष्टिगत होगा। पति पत्नीमें संघर्ष भाई-भाईमें वैमनस्य, पिता-पुत्रमें अन-बन किसान जमींदारों की हल-चल, कारखानोंमें मालिक और मज़दूरों की लड़ाई। एक देश दूसरे देशके अभ्युदयको फूटी आँखसे देख नहीं सकता। साम्यवाद, समाजवाद पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद, न जाने कितने वाद बरसाती मेंढकों की भाँति निकल पड़े हैं। प्रत्येक अपनी सत्ता, अपनी धाक और अपना आतङ्क जमाने पर तुला नज़र आता है। सेनाएँ सुसज्जित की जा रही हैं, अणु बम्बके आविष्कार से अभी सन्तुष्टि नहीं हुई। संहारके नवीन-नवीन साधन जुटानेके लिये वैज्ञानिकों के मस्तिष्क संलग्न हैं। दम भरते हैं विश्व शान्ति स्थापित करनेका किन्तु काम करते हैं अहर्निश विश्व-संहारका। कैसी प्रलयङ्करी विडम्बना! दो विश्व-युद्ध लड़े जाचुके। प्रत्येक में यही कहा जाता रहा कि यह अन्तिम युद्ध है इसके बाद नयी दुनियाँ बनेगी, और नया दौर आयेगा। जैसी नवीन दुनियाँ बनी, उसका पता किसको नहीं! आग और भी उग्र-रूप से धधक उठी है। भय है नजानें कब ज्वालामुखी फूट बहे? वैदिक कालका नकशा ही जुदा था।

[अ] प्रत्येक गृहस्थ (ऊर्जं बिभ्रत्) खाद्यपदार्थों से परिपूर्ण था। भुक मरी का नाम न था। हाय रोटी! हाय रोटी!! की चिल्लाहट न थी। मनुष्य पशुवत् केवल खाने के लिये ही नहीं जीता। उसका ध्येय कहीं अधिक उदार, और लक्ष्य कहीं अधिक ऊँचा है!

[ब] प्रत्येक गृह-पति, ग्राम-पति, नगराधिपति—नहीं नहीं छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा गण-पति (वसुवनिः) था। धनसम्पत्ति और दैनिक-जीवन के

आवश्यक पदार्थोंका समुचित विभाजन था। अमरीका के समान कहीं धन-दौलत के पहाड़ और एशियाई देशोंके समान कहीं निर्धनताके गहरे गर्त दिखायी न देते थे। असमानता के भयङ्कर दृश्य देखे दिखायी न पड़ते थे। फिर बताइये कम्युनिज्म के हव्वेका किसको भय !

[स] गृहस्थ और इसी प्रकार प्रत्येक संस्था का सञ्चालक [सुमेधाः] निर्वाचित किया जाता था, समबुद्धि वाला चुना जाता था। स्वार्थी, सम्प्रदायवादी पक्षपाती, अन्यायी अगुआ लीडर और राजकर्मचारियों की आज सर्वत्र भरमार है, वैदिक काल इनसे नितान्त अछूता था। कमसे कम वेदकी शिक्षाएँ इस प्रकार के दोषों से शून्य मिलेंगी।

[द] प्रत्येक अधिपति [सुमनाः] होता था, निश्छल और निष्कपट मन वाला होताथा। आजकी पौलिसी और वैदिक कालीन पौलीसी में जमीन आसमान का अन्तर था। मुख में राम बग़ल में छुरी आधुनिक युग का आविष्कार है। अपने आश्रित जनों का कल्याण-साधन प्रमुख बात समझी जाती थी, और स्वार्थ पीछे की। मनसा वाचा कर्मणा तीनों प्रकार की साम्यताका ध्यान रक्खा जाता था।

[प] प्रत्येक नेता [वन्द-मानः] था, वन्दनीय समझा जाता था, देवता की भाँति उसकी पूजा सपर्या होती थी। हिन्दुओं के प्रत्येक शुभ अवसर पर 'गणपति' पूजा उसी प्राचीन आदर्शका सङ्केत अवतक चला आ रहा है। विश्ववन्द्य नेता तक को गोली का शिकार बनाना आधुनिक सभ्यता का प्रसाद है।

[फ] वैदिक कालीन स्वामी [अघोरेण मित्रियेण चक्षुषा गृहान् एहि] सौम्य, स्नेह मयी मित्रदृष्टिसे प्रजाजन को देखनेका, न्यायपूर्ण व्यवहार करनेका, वचन देता था। जबक भी उनके सम्पर्क में आता था आनन्द मङ्गलका अवसर दिखायी पड़ता था। भय और आतङ्क का नामो निशान न था।

[ब] [रमध्वम्] आनन्द मङ्गल मनाए जाते थे। निर्भय विचरण होता था। किसीके द्वारा किसी पर बम्ब के गोले फैंके जाने की आशंका न थी। पिता-पुत्र का सा व्यवहार था। एक दूसरे के कल्याण साधन की चिन्ता थी, प्राणहरण की नहीं।

[भ] [मत् मा बिभीत] मुझसे मत भय खाओ। भय क्यों खायीजाय ? भय लगता है अन्यायीसे, स्वार्थीसे, आततायी से। मङ्गलकारी से सिवाय प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, और सत्कार के अनिष्ट की आशंका हो ही नहीं सकती।

—०—

वेदोंमें कथित राजाओंकेनामों कारहस्य

[लेखक—अनुसन्धान-कर्ता श्री शिवपूजनसिंह साहित्यालंकार, सिद्धान्तशास्त्री, पोस्टबाक्स २५०, कानपुर]

(गतांक से आगे)

भरत—ऋ० ३. ५. २४. 'इम इन्द्र भरतस्य पुत्राः' में भरत शब्द देख कर लोग राजा भरतका अनुमान करते हैं। कहा जाता है इसीके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष हुआ।

अग्निर्वै भरतः (कौ० ३. २.) भरत=ऋत्विज् निघण्टु २. १८.

श्री यास्क लिखते हैं:—'भरत आदित्यस्तस्य भाः'। (निरुक्त ८. १४.) अर्थात्—भरतका अर्थ है आदित्य।

रघु—ऋ० ५. ३०. १४. 'रघुरज्यमानो में' ऋ० ९. ४५. ९. रघुः श्येना, में तथा ऋ० ८. ३३. १७. में रघु शब्द आया है। परन्तु यहाँ रघु सूर्यवंशी नहीं है।

श्रीसायणाचार्य तथा महर्षि दयानन्दजी ने 'रघु' को 'लघु' मानकर इस शब्दके अर्थ वेगवान् सूक्ष्म आदि किए हैं।

पं० जयदेवशर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थने 'रघु' का अर्थ=वेगसे उन्नति-पथ पर जानेवाला ❋ तथा वेगवान् ÷ अर्थ किया है।

❋ऋग्वेद संहिता भाष्य तृतीय खण्ड, प्रथमावृत्ति पृष्ठ७८८

÷ वही, पृष्ठ ८७५।

भोज—ऋ० १०. १०७. ११. 'भोजः शत्रून्समनी' में 'भोज' शब्द आया है। परन्तु यहाँ राजा भोज का वर्णन नहीं है। यहाँ 'भोजयति यः स भोजः' जो दूसरों को भोजन खिलाता है अर्थात् भोजनदान करने वाले का नाम भोज है। भोज=रक्षक, दाता, रथ का स्वामी ●।

नहुष—ऋ० ८.८. ३; १. १२२. ११., ७. ६. ५. १०. ९२.१२; ८. ६. २४. में 'नहुष' शब्द आया है।

नहुष=मनुष्य (निघण्टु २. ३.) नहुष=बादल ❋

ययाति—ऋ० १. ३१. १७ में ययाति शब्द आया है।

ययाति भी कोई तारा है अथवा आकाशका कोई चमकीला पदार्थ है।÷

'सूर्य सिद्धान्त' की भूमिका में उदय नारायणसिंह ने लिखा है कि 'ययाति' एक तारा है।

इक्ष्वाकु—ऋ० १०. ६०. ४. में 'इक्ष्वाकु' शब्द आया है। परन्तु 'इक्ष्वाकु' औषधिका नाम है। यथा—

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाकोर्यं वा त्वा कुष्टकाम्यः।
यं वायसो यं मात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः॥
अथ० १९. ३९. ९।

अर्थात् जिसको लोग इक्ष्वाकु जानते हैं कुष्ट काम्य मानते हैं और खाद्य जानते हैं ऐसी तू सर्वौषधि है।

इक्ष्वाकु कुसुमचूर्णं वा पूर्ववदेव क्षीरेण। कासश्वास च्छर्दिकफरोगेषु उपयोगः। सुश्रुत ४४. ६।

अमरकोष में भी 'इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्' लिखा हुआ है। सुश्रुत ४४. ७ में 'इक्ष्वाकुः कटुतुम्बिका' अर्थात् इक्ष्वाकु कटुतुम्बी है।

यदु, तुर्वश, पुरु, द्रुह्यु, और अनु—

ऋ० १.४७.७., १.३६.१८, १.१७४.९., ४.३०.१७, १. १०८.८. में तुर्वश शब्द ऋ० १.३६.१८., १.१७४.९., १. १०८.८., ऋ० ८.९.१८., अथर्व०२०.१४२.३, में यदुशब्द ऋ० ८.१०.६, ऋ० १.१२.२०, अथर्व०२०.१०१.२, ऋ० १०.९४.५, अथर्व०६.४९.३, ऋ०६.४७.१८, ऋ०५.१८.१, में पुरु शब्द ऋ० १.१०८.८, में द्रुह्यु शब्द ऋ० ८.६९. १८, अथर्व२०.२६.३, में 'अनु' शब्द आए हैं जिनको देख कर ऐतिहासिक लोग राजाओं का नाम समझते हैं।

ये सभी शब्द निघण्टुमें आए हैं जिनके अर्थ निम्न हैं।

यदु=मनुष्य निघण्टु २.३.
तुर्वश=मनुष्य निघण्टु २.३.
पुरु=बहुत निघण्टु ३.१.
द्रुह्यु=मनुष्य निघण्टु २.३.
अनु=मनुष्य निघण्टु २.३.

प्रो॰ मैकडोनेल अपनी 'हिष्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर' में लिखते है कि ऋग्वेद में बार बार कहे गए पुरु आदि पाँचों वर्गोंका ब्राह्मण ग्रन्थों में नाम तक नहीं है। यदि ये इतने सरल अर्थवाले ऐतिहासिक व्यक्ति होते तो ब्राह्मण ग्रन्थों में इनका कुछ भी तो बर्णन होता पर वहाँ जिक्र तक नहीं है। ऐसी दशामें ये व्यक्ति ऐतिहासिक सिद्ध नही होते। ❋

सोमक साहदेव्य—ऋ० ४.१५.७ १०में साहदेव्य शब्द आया है। इस पर श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम. ए. को भ्रम हुआ है। आप लिखते हैं:—

'साहदेव्यः सोमकः' ऐसा उल्लेख ऋग्वेद में आया है! सोमक राजसूय करने वाला बड़ा सम्राट् था, अतएव उसके वंशजों को 'सोमका' नाम मिला और यह नाम भारत में बार बार पाया जाता है। ÷

इन मन्त्रोंमें तो किरणों का और अश्विनौ देवताओं का सम्बन्ध सोमक सहदेव के साथ लगाया गया है। किरणों और अश्विनौ आकाशीय पदार्थ हैं इसलिए ये हरिवंश अध्याय ३२ के सहदेव सोमक नहीं हैं।

वैद्यक में सहदेव सोमक औषधिका नाम है यथा शालिग्राम निघण्टुमें लिखा है:—

सहदेवः देवैः सह, सहदेवी के नाम हैं और बहुमूत्रं-नाशयति यह गुण है इसी से सोमक कही गई है।

अम्बा अम्बिका अम्बालिका—वेदोंमें औषधि को 'अम्ब' कहा गया है। ऋ० १०.९७.२. तथा यजु०१२. ७६. में शतं वोऽअम्ब धामानि...= हे (अम्ब) माता के समान पुष्टिकारक औषधियो! कहा है।

● वही, सप्तमखण्ड, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ४३८।
❋ वैदिक सम्पत्ति द्वितीय संस्करणपृष्ठ ६४।
÷ वही पृष्ठ ६३।

❋ वैदिक सम्पत्ति द्वितीय संस्करण पृष्ठ ६४।
÷ महाभारत मीमांसा पृष्ठ १०७ (सन्१९२०ई० पूना संस्करण)

यहाँ रोगी आरोग्य होनेके लिए अम्ब से कहता है।

यजु० ३.५७.में अम्बिका शब्द आया है जिसका अर्थ है 'अम्बिकया =अम्बते शब्दयति यया तया' (ऋषि दयानन्द जी यजुर्वेद भाष्य) अर्थात्-वेदवाणी, वाणी।

अम्बिका=माता, पृथिवी के साथ +।

अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन (यजु० २३.१८)

यहाँ यजुर्वेदमें वर्णित अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका शब्द महाभारत कालीन कन्याओं के द्योतक नहीं हैं।

माचिका प्रथिताम्बष्ठा तथाम्बाऽम्बालिका (भावप्रकाश हरीतक्यादिवर्ग) यहां अम्ब, अम्बालिका औषधियों के नाम हैं।

अम्बिकाः=जलके समूहका नाम अम्बिका है अर्थात् मेघधारा। अम्बूनां समूहः अम्बिका।❋

गौरी—ऋ० १.१६४.४१ में 'गौरी' शब्द देखकर लोग पौराणिक शिव की स्त्री गौरी समझने लगे हैं, परन्तु यह भ्रम है।

'गौरी–वाणी (निघण्टु १.११)

श्री सायणाचार्य इस मन्त्रके भाष्यमें लिखते हैं:—'गौरी गरणशीला माध्यमिकावाक्' अथवा 'गरणशीला शब्दब्रह्मात्मिका वाक्' अर्थात्–वाणीका नाम गौरी है।

दक्ष—ऋ० १०.६४.५ में 'दक्ष' नाम आया है जिसे देखकर दक्षप्रजापतिका अनुमान किया जाता है, परन्तु यहाँ दक्ष=सूर्यका नाम है।

श्री यास्काचार्य लिखते हैं:—'आदित्यो दक्ष इत्याहुः' (निरुक्त दैवतकाण्ड ११.२०) अर्थात् दक्ष नाम सूर्यका है।

रावण—अथर्ववेद ४.६.१में 'ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः' में 'दशशीर्ष' शब्द देखकर पं० कालूराम शास्त्री ने अपनी 'अवतार-मीमांसा' नामक पुस्तक में यह मन्त्र देकर 'रावण' का अर्थ किया है।

परन्तु यह सूक्तका सूक्त विषकी चिकित्साका है। ब्राह्मण ब्रह्मदृष्टि नामक औषधि है।

यहाँ सूर्यकी विषनाशक शक्ति का भी वर्णन है।

दशरथ—ऋ० १.१२७.४ में 'दशरथ' शब्द आया है।

'दशरथस्य दशसंख्याकरथवतः......' सायणः

अर्थात् दशसख्याक रथवालेको दशरथ कहते हैं।

दशरथ–'दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य सः' (शब्दस्तोममहानिधि कोष)

ऋष्टिषेण—ऋ० १०.९८.५में यह शब्द आया है।

ऋष्टिषेणो, मध्यमः तत्र भवत्वाचार्ष्टिषेणो वैद्युतः... (दुर्गाचार्यः)

अर्थात् (ऋष्टिषेण) मध्यमस्थानीय अर्थात् अन्तरिक्ष स्थानीय अग्नि-विद्युत्।

'ऋष्टिः रेषणा हिंसा च कामादीनाम्...........'

'आचार्य स्कन्द स्वामी पृष्ठ ७३

अर्थात् ऋष्टिषेण उसका नाम है जिसकी इन्द्रियाँ विषयोंसे पृथक् हो चुकी हों।

राम—ऋ० १०.३.३ 'भद्रो भद्रया सचमान आगात्' .....में नीलकण्ठने लिखा है–'(भद्रः) भजन करने योग्य रामभद्र। † (रामं) श्री रामरूपं विष्णुम्।

परन्तु रामका अर्थ यहाँ राम रूप विष्णु नहीं है वरन 'रामं-कृष्णं शार्वरंतमः' –सायणः-रात्रि का अन्धकार है।

कृष्ण—ऋ० में १३, यजुमें १२, अथ०में १३ स्थानों में कृष्ण शब्द आया है; परन्तु यह योगीराज कृष्णका नाम नहीं है; वरन् इसके भिन्न२ अर्थ हैं। ÷

ऋषि दयानन्द, सायण, महीधर, उव्वट प्रभृति सभी भाष्यकारोंने 'कृष्ण' का अर्थ काला, कर्षक, मृग, आकर्षण विद्या किया है।

निरुक्त २.२० में श्री यास्क लिखते हैं:—'कृष्णं कृष्यते, निकृष्टो वर्णः; कृष्णवर्णा रात्रिः'। यहाँ भी काला ही अर्थ है।

कुशिक—ऋ० ३.३३.५ 'कुशिकस्य' शब्द आया है। यह मन्त्र निरुक्त २.७ में आया है जिसका अर्थ श्री यास्काचार्य जी लिखते हैं:—'.....क्रोशतेः शब्दकर्मणः, क्रंशतेर्वा प्रकाशयति कर्मणः।'

अर्थात्—कुशिक उत्तम वाणी वाला अर्थात् विद्वान् हितकर बातोंका बतलानेवाला।

+ पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार कृत 'यजुर्वेदभाष्य प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ९९।

❋ त्रिदेवनिर्णय द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १९३

† 'दयानन्द तिमिर भास्कर' पृष्ठ २१२ (संवत् १९६२ तृतीयावृत्ति बम्बई)

÷ मासिक पत्र 'वैदिक धर्म वर्ष २९ फरवरी १९४८ ई०, अंक २ पृष्ठ ४० से ४५ तकमें प्रकाशित मेरा 'योगीश्वर कृष्णजी के जीवन पर एक दृष्टि, शीर्षक लेख।

इन्द्र—ऋ० १.१६४.२१, ५.३.१; तथा ऋग्वेदके प्रायः एक चौथाई सूक्तोंमें 'इन्द्र' शब्द आया है।

'इन्द्र' का अर्थ भिन्न भिन्न है।

यथा—इन्द्रका अर्थ परमेश्वर, वायु, विद्युत्, जीवात्मा, सम्राट् प्रभृति हैं।

[मासिक पत्र 'दयानन्द-सन्देश' देहली, मई-जून १९४८ ई० में प्रकाशित मेरा 'इन्द्रका वैदिक स्वरूप' शीर्षक लेख]

पुरुरवा— यजु० ५.२; ऋ० १०.९५.५, में पुरुरवा उर्वशी नाम आया है। यहाँ 'पुरुरवा' का अर्थ बहुत शास्त्रोंका उपदेश देनेवाला, बहुत शब्द करनेवाला; सूर्य, तथा उर्वशीका अर्थ विद्युत् प्रभृति है।

प्रो० मेक्समूलरके मतसे सूर्य और उषाका वर्णन है। यही मत डाक्टर गोल्डस्टकरका भी है।

श्री रमेश चन्द्र दत्तने भी सूर्य ही अर्थ किया है।

[विस्तृत विवरणके लिए देखो मासिक पत्र 'सार्वदेशिक' देहली वर्ष २३ अप्रैल १९४७ ई० अंक २ पृष्ठ ७०२ से ७०७ तकमें प्रकाशित मेरा 'वैदिक पुरुरवा-उर्वशी उपाख्यान पर दृष्टि' शीर्षक लेख]

अत एव वेदोंमें आए हुए ऋषियों व राजाओंके नाम देखकर इतिहास मानना ठीक नहीं है। वे शब्द सब यौगिक हैं।

महर्षि दयानन्द जी के वेदभाष्यकी भी यही शैली है।

[देखो—मासिक पत्र 'सार्वदेशिक' देहली, मई, जून, जुलाई, अक्टूबर सन् १९४७ ई० में प्रकाशित मेरा 'ऋषि दयानन्द जी कृत वेदभाष्यानुशीलन' शीर्षक बृहत् लेख]

मेरे इस पक्षकी पुष्टि पाश्चात्य विद्वान् भी करते हैं। यथा—प्रो० मैक्समूलर लिखते हैं:—

'क्या ही विचित्र है कि वेदोंमें जो नाम मिलते हैं वे नाम विशेष पुरुषोंके नहीं, वे तो यौगिक हैं, वे द्रवावस्थामें हैं, किसी विशेष पुरुषके नहीं कहे जा सकते। हर एक शब्द अपने धातविक अर्थों का कुछ न कुछ प्रकाश करता है'।

(एन्श्यैंट सस्कृत लिट्रेचर, पृष्ठ २८०)

—०—

आर्य-समाज के नेताओं से

देश आज स्वतन्त्र है,—हमारे बन्धन टूट चुके हैं—विदेशी शासकोंसे हम मुक्त हैं। जब हम परतन्त्र थे, आर्य समाजके मञ्चसे राष्ट्रमें परतन्त्रताके विरुद्ध जनताको तैयार करना व इन बन्धनोंसे मुक्त करनेके निमित्त प्रोत्साहन देना हम अपना गौरव समझते थे। यह मानना पड़ेगा कि आर्यसमाजने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूपसे राष्ट्रियताका भाव सञ्चारित करके स्वतन्त्रताके संग्राममें सहयोग प्रदान किया है।

किन्तु आज हममें शिथिलता क्यों? ऐसा हम क्यों समझने लगे हैं कि हमारे सन्मुख कोई नवीन कार्यक्रम नहीं है। विचार करने से हम को यह ज्ञात होता है कि आर्यसमाजके पदाधिकारी अपनेको केवल पदों तक एवं आपसी झगड़ों तक ही सीमित रखते हैं जिससे नये २ कार्यक्रम जो अन्य सदस्योंमें उत्साह भरें, अन्धकारमें पड़ जाते हैं। और हम केवल प्रस्ताविक संसार तक सीमित रह जाते हैं जो पाश्चात्य सभ्यताकी देन है। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिये कि ऋषि दयानन्दके अनुयायी क्रियात्मक कार्यक्रम में ही अपना गौरव समझते हैं। आर्यसमाजका इतिहास आदर्शों से भरा-पड़ा है और हमारे आदर्श ही हमको ऊपर उठानेमें सफल होंगे।

वास्तवमें देशके सन्मुख आज ऐसी समस्यायें हैं जिन को हम अपनी लगन व परिश्रमसे योग प्रदान कर यह सिद्ध कर सकते हैं कि देशको ऊपर उठानेमें आर्यसमाजका प्रमुख हाथ है। वास्तविक कार्य करनेका समय आर्यसमाज के लिए अब आया है। परतन्त्रताके समय हम बहुतसे कार्यो को नहीं कर पाते थे क्योंकि हमको कार्य करने की स्वतन्त्रता न थी। उस कार्यको आज हम यदि स्वतन्त्र वायुमण्डलमें पूर्ति न करेंगे तब कब करेंगे। यह समय ही तो प्रत्येक आर्यकी परीक्षाका समय है। आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था है जो धार्मिकताका मन्त्र फूँकते हुए सुधारों के रास्तेपर देशको ले जा सकती है। तब सुधारों एवं नैतिक बल प्रदान करनेका कार्यक्रम आर्यसमाज क्यों नहीं आगे बढ़ती? जनतासे निकटतम सम्पर्क बढ़ाकर, जनताकी सेवा करके, जनताकी लोकप्रिय क्यों नहीं बनती? अपने को केवल प्रस्तावों व वार्षिक अधिवेशनों तक सीमित रखने

वाली आर्यसमाजके कर्णधार यदि समयको पहचानकर आगे न बढ़ेंगे तो अपनी प्रतिष्ठा खो बैठेंगे व देशके प्रति अपनी वास्तविक कर्तव्य परायणतासे हटेंगे ।

इतिहास यह बताता है जिससमय देशको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो उस समय उसकी पूर्ति करनेवाली संस्था ही अपने कर्तव्यका पालन करती है व जनताके लिए आदरणीय हो जाती है । आप याद करें सन् ४२ की क्रान्तिके पश्चात् देश अङ्गरेज़ों के अमानुषिक अत्याचारों के कारण मृतक समान था ऐसे समयमें देशके युवक इतने हतोत्साहित थे कि कुछ करनेकी इच्छा उनमें न थी—उनमें भय समा गया था । ऐसे समयमें क्रान्ति फूँकनेके लिए एक वीरता पूर्ण इतिहासकी आवश्यकता थी; जिसकी पूर्ति आज़ाद हिन्द सरकार व उसके वीरतापूर्ण इतिहासने की । अत्याचारोंसे कम्पायमान राष्ट्र उनके आदर्शों और प्रेमकी कहानी सुनकर एक बार फिर सर्पकी तरह फुफकार मार कर उठ खड़ा हुआ था । इस गौरव पूर्ण इतिहासने नवजीवन भर दिया था । राष्ट्र को आज सुधार और नैतिक बल की आवश्यकता है । आर्यसमाज यदि उसे कार्यक्रमका प्रमुख अग बनाये तो आर्यसमाजकी लोकप्रियता बढ़ जायगी और तब ही हम वास्तविक अर्थमें स्वामी दयानन्द जी के कार्यको पूरा करनेमें समर्थ हो सकेंगे । अतएव हमारा नम्र निवेदन आर्यसमाजके कर्णधारोंसे है कि समय और आवश्यकताको पहचानें एवं समयके साथ चलें ।

—अवध विहारी आर्य, विश्वनाथगली, बनारस ।

—०—

भाव्य वेद-भाष्यकी रूपरेखा

(लेखक—डाक्टर गङ्गाचन्द्र अग्रवाल , वैद्यशास्त्री ।)

प्राच्य वेद भाष्य-कर्त्ताओं में सायण, उव्वट, महीधर और आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वनामधन्य ऋषिवर दयानन्द प्रमुख हैं । अब तक जितनी ऊहापोह हो चुकी है, उससे यह बात निश्चित रूपसे प्रमाणित हो चुकी है कि ऋषिवर दयानन्दने जिस प्रशस्त पथ का निर्देश अपने वेद-भाष्य में किया है, उस पथसे सायण आदि भाष्यकार न केवल विचलित ही हुए थे, अपितु वे अपनी विचित्र मनोवृत्ति के कारण परम कारुणिक, सृष्टि-कर्त्ता द्वारा सृष्टिकी आदि में मनुष्यमात्र को दी हुई पवित्र धरोहर के वर्णन में अपनी लेखनी को कलङ्कित करते हुए न हिचके थे ।

पाश्चात्य जगत् के भाष्यकार मैक्समूलर ग्रिफिथ, विल्सन, लुडविग, ह्विटनी और वैनफी हैं जिन्होंने अपने भाष्यों में सायण पद्धति का ही अवलम्बन किया है, और जिनके भाष्यों का अनुशीलन रिसर्च की दृष्टि से भले ही उपादेय हो अन्यथा समय और शक्ति का दुरुपयोग करना है ।

वेदके समझ सकने वाले तीन कोटिमें विभाजित किए जा सकते हैं । एक तो वे हैं जो वेदके मर्मज्ञ हैं, उसके रहस्यको समझते हैं, ऐसे लोग आर्यसमाज की परिधिके अन्दर पाए जाते हैं । दूसरे वे है जिन्हें सनातनी पण्डितके नामसे पुकारा जाता है । और जो प्रयत्न करने पर वेद को तथ्य रूपसे समझ सकते हैं किन्तु जिनकी गति व्याकरण, स्मृति और पुराण ग्रन्थोंसे आगे नहीं जाती । तीसरे वे नवयुवक हैं जिन्होंने अपने शिक्षा कालमें संस्कृत का अध्ययन तो किया है लेकिन जिनका संस्कृत-ज्ञान वेदके समझनेके लिए पर्याप्त नहीं है । वे वेदको समझ तो सकते हैं किन्तु तीव्र प्रकाश (टार्च लाइट) दिखलाने पर । यही टार्च लाइट भाव्य वेद-भाष्यकी रूप रेखा है और जिसकी मीमांसा करना प्रस्तुत लेखका उद्देश्य है ।

एक दिन अंग्रेजीके साथ साथ संस्कृतकी शिक्षा पाए हुए एक ब्राह्मण नवयुवकने अपनी कठिनाई मेरे सामने यों उपस्थितकी । उसने ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका में 'सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति । सोऽपि 'गौरुच्यते' (निरु० अ० २ खं० ६) पढ़ा । उसकी समझ में 'गन्धर्व' शब्दका अभिप्राय न आया । उसने प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्नकृत निरुक्तभाष्य को उठाया । उसके पृष्ठ ११८ पर 'गन्धर्व' का अर्थ 'धारण करने वाला' मिला और यही अर्थ पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ के वेद-भाष्यके पृष्ठ २९ पर मिला । उसने कहा कि ध्वनि और अर्थसे तो प्रतीत होता है कि यह 'धृ' धातु से बना होगा किन्तु यह निश्चयरूपेण ठीक है या नहीं । फिर किस विभक्ति में है, इस धातु से

कैसे बना पता नहीं। उसकी यही दशा 'सुषुम्ण' 'अप्सरस्' और 'मेकुरि' शब्दोंके सम्बन्ध में भी हुई।

उस नव युवक ने फिर तार विद्याके मूल—

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः। शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्॥

इस मन्त्रका ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में से निकाला। उसने बतलाया कि 'इस मन्त्र का लगभग प्रत्येक शब्द इतना कठिन है कि "ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में स्वामी जीके दिए अर्थ और पं० जयदेव जीके वेद-भाष्य में दिए हुए अर्थ से यह समझ में नहीं आता कि 'पेदवे' 'पुरुवारं' 'तरुतारम्' शर्य्यैः 'अभिद्युम्' 'पृतनासु' 'चर्षणीसहम्' चर्कृत्यम् आदि शब्द किन धातुओं से बने हैं, किन विभक्तियों में हैं क्या प्रत्यय लगे हैं।"

स्वामी जी महाराजने वेद को विज्ञानसम्मत सिद्ध करनेके लिए इस मन्त्र को तार विद्याका मूल बतलाया और 'तरुतारं' का अर्थ ताराख्यं यन्त्र किया, किन्तु स्वामी जीके वेद-भाष्य के चिन्हों पर चलने का दम भरने वाले पं० जयदेव ने 'तरुतारम्' का अर्थ किया पर पहुँचा देने वाले। यह मैं नहीं कहता कि यह अर्थ न होगा, किन्तु वेद में तार विद्या प्रमाणित करने के लिए जिस शब्द का अर्थ स्वामीजी ने 'ताराख्यं यन्त्र' किया उसकी नितान्त उपेक्षावृत्ति एक अक्षम्य अपराध है, विशेष कर उसका जो वेद में विज्ञानके अस्तित्वका दम भरता हो और स्वामी जी के पदचिन्होंका अनुसरक हो।

उस ब्राह्मण नवयुवकने कहा कि मेरी बड़ी लालसा है कि गाँवों में जाकर वेदों का प्रचार करूँ। शहरों की जनता तो नास्तिकतापरक हो रही है। गाँवों में जाकर मैं चाहता हूँ कि वेद की वाणियोंको समझाकर उनका मन वेदों की ओर फेरूँ; किन्तु मैं ही वेद की बारीकीको जब समझने में असमर्थ हूँ तो उनको क्या समझाऊँगा। अब मेरी अवस्था गुरुकुल जाने की है नहीं और प्रत्येक शहरके आर्यसमाजों में कितने सदस्य हैं जो मुझे पूर्णतया वेद की बारीकीको समझा जा सकते हैं। जितना परिश्रम मैं वेद की पुस्तकको लेकर समझने में करता हूँ और न समझ पाने पर शिर ठोक लेता हूँ उतना परिश्रम यदि मैं तुलसी-कृत रामायण में करूँ तो ग्रामीण जनता को उसकी कथा से मंत्र-मुग्ध कर सकता हूँ। अस्तु यह है कथा एक नवयुवक हृदयकी व्यथाकी।

स्वामी जी का भाष्य विद्वानों के लिए हैं। उसमें शब्दार्थ, उक्ति निरुक्ति तो है, किन्तु जिस मात्रा में होनी चाहिए उसमें नहीं, उसपर महाभाष्य की आवश्यकता है। फिर उसका समझना प्रत्येक नवयुवकके लिए आसान नहीं।

स्वामी जी के भाष्य के बाद कई भाष्य बने। पं० जयदेव विद्यालंकार के भाष्य की दशा का वर्णन ऊपर हो चुका है। इससे गर्व तो किया जा सकता है कि साधारण हिन्दी में वेद का भाष्य हुआ, किन्तु इससे कितना प्रयोजन सिद्ध हुआ और वेद के समझने की उत्कण्ठा रखने वाले कितने लोगों की मनस्तुष्टि हुई यह अनुमान करने का विषय है। अलबत्ता इससे अलमारी की शोभा-वृद्धि अवश्य हुई। मैंने सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद से सनातन-धर्मपताका के सम्पादक ऋषिकुमार स्वर्गीय प० रामस्वरूप कृत वेद भाष्य को मँगाया लेकिन इसमें भी वह बात नहीं जिसकी आवश्यकता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक महामहोपाध्याय पं० सीताराम शास्त्री द्वारा सम्पादित और इण्डियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित सायण-भाष्य से भी सन्तोष नहीं होता।

सम्भल सरायतरीन मुरादाबादके साहू शिवचन्द्र जी सेठ के १५०००) रुपये के दान से वैदिक संस्थान द्वारा यजुर्वेदका संक्षिप्त सरल अनुवाद छपा किन्तु यजुर्वेद संहिता प्रथम खण्ड के मँगवाने के बाद मुझे ऐसी निराशा हुई कि बाद में यह बात जानने की भी तबियत न हुई कि आगेके खण्ड छपे कि नहीं। अलबत्ता इस अनुवाद में प्रस्तावित-अशेष-विशेष, युक्ति-निरुक्ति, पद-पदार्थ, प्रमाण-पुष्टि, पुरस्सर एवं भाषानुवाद सवलित संस्कृत के वृहद् भाष्य से संस्कृतज्ञ नव-युवकोंके उपकार होने की आशा है।

वास्तव में वैदिक ज्ञानके प्रचारकी दृष्टिसे संस्कृतज्ञ नव-युवकोंकी मनस्तुष्टि तभी होगी जब उनको ऐसा वेद-भाष्य प्राप्त होगा जिसमें प्रत्येक पदकी, चाहे कठिन हो या सरल, प्रमाण-पुष्टि, पुरस्सर युक्ति निरुक्ति हो।

वेदवाणी के अंक २ में में श्री आचार्य वीरेन्द्र जी एम. ए. ने अथर्व वेदके प्रथम मत्रका जो भाष्य किया है वह मुझे बहुत पसन्द आया। इसी प्रकारके भाष्य से भगवान् वेदके सौन्दर्य की छाप हम नव-युवकोंके हृदय पर लगा सकते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि प्रशंसित आचार्य जी ही, जब तक किसी ऐसे भाष्य की सत्ता दृष्टि पथ में नहीं आती, प्रत्येक मास ऐसाही भाष्य कुछ और उक्ति निरुक्तिके साथ विशद रूप में वेदवाणी में प्रकाशित किया करें।

आज कल दयानन्द पुरस्कार-निधि की चर्चा चल रही है। इस निधि से वैदिक सिद्धान्तों पर लिखे गए पुस्तकों पर पुरस्कार दिए जायँगे। सिद्धान्तों पर पुरस्कार देने की चिन्ता तो है किन्तु खेद है कि सिद्धान्तों के अक्षय कोष वैदिक पुष्पकी प्रत्येक कली के खिलने की परवाह नहीं।

स्कीम है तो कठिन, किन्तु मेरे खयाल में आर्योंका धार्मिक कर्त्तव्य तभी पूर्ण होगा जब प्रसिद्ध वेदज्ञ श्री सत्यव्रत जी सामश्रमीकी धारणा के अनुसार वेद-भाष्यका सम्पादन ऐसे सम्पादक मण्डल के द्वारा होगा जिसमें ज्योतिषी, वैद्य, भूगर्भवेत्ता गणितज्ञ आदि होंगे। यह होगा वेद का विश्वकोष (इन्सइ क्लोपीडिया) और इसके प्रकाशित होने पर ही हम दुनियाँ के सामने यह सगर्व कह सकेंगे कि हम ब्रह्म ऋण से उऋण हुए। इस योजना पर यदि लाखों करोड़ों रुपए का भी व्यय हुआ तो वह न्योछावर मात्र ही होगा। इत्यलम्।

—०—

दीपावली का पर्व

(आर्य-पर्व-पद्धति से)

गृह्यकृत्य—यतः दीवाली का पर्व वर्ष भर में घरोंकी लिपाई-पुताई आदि संस्कारके लिए विशेषतः उद्दिष्ट है, इसलिए स्वसुभीतेके अनुसार दीवालीसे पूर्व दिनके सायंकाल तक प्रचलित प्रथानुसार यह सब कार्य समाप्त हो जाना चाहिये। कार्तिकी अमावास्याके दिन प्रातःकाल सामान्य पर्व-पद्धतिमें प्रदर्शित प्रकारानुसार यज्ञशाला वा आवासगृहके तलको गोमयसे पुनः लेपन करके स्वदेशीय नवीन शुद्ध वस्त्र परिधानपूर्वक सामान्य होम करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे स्थालीपाक ३८ विशेष आहुतियाँ दी जांय। स्थालीपाकसे नवागत श्रावणी शस्य के अन्नसे बनाया गया पायस (खीर) हो। हवनके अन्य साकल्य में लाजा (नवीन धानों की खील) विशेषतः मिलाई जांय।

आहुतिके मन्त्र

१. परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्। स्वाहा।

२. मृत्योः पद योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः। स्वाहा।

३. इमे जीवा विमृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य। प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः। स्वाहा।

४. इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषांनु गादपरो अर्थमेतम्। शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन। स्वाहा।

५. यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु। यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम। स्वाहा

ऋ० १०. १८. १-५;

६. आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः। व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा। स्वाहा।

अथ० ३. ३१. ८;

७. ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्य्येण देवेभ्यः स्वराभरत्। स्वाहा।

अथ० ११. ५. १९;

८. शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेभिमातिषाहे। शतं यो नः शरदो अजीजादिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा। स्वाहा।

९. ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी वियन्ति।

तेषां यो अज्यानिमजीजिमावह तस्मै नो देवाः परिदत्तेह सर्वे स्वाहा।

१०. ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षाः सुवितन्नो अस्तु। तेषामृतूनां शतशारदानां निवात एषामभये स्याम। स्वाहा।

११. इद्वत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग् जीता अहताः स्याम। स्वाहा।

म० ब्रा० २. १. ९-१२,
गोभिलीय गृह्यसूत्र ३. ७. १०-११,

१२. ओं पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः। तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः। स्वाहा।

१३. ओं यन्मे किञ्चिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्। तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतम्। स्वाहा।

१४. ओं सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न मम।

१५. ओं यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि स्वाहा। इदमिन्द्रपत्न्यै, इदन्न मम।

१६. ओं अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलमालिनीमुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवां सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा। इदं सीतायै, इदन्न मम।

१७. ओं सीतायै स्वाहा।

१८. ओं प्रजायै स्वाहा।

१९. ओं शमायै स्वाहा।

२०. ओं भूत्यै स्वाहा।

२१ ओं व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। स्वाहा। यजु० १८. १२,

२२. ओं वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः। वाजो नो विश्वै र्देवैर्धनसाताविहावतु स्वाहा।

२३. ओं वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्। स्वाहा।

२४. ओं वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयित। वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम्। स्वाहा।

२५. सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ। स्वाहा।

यजु० १८. ३२. ३५,

२६. युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्। विराजः श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्। स्वाहा।

२७. लाङ्गलं पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु। उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् स्वाहा।

२८. इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाभिरक्षतु। सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्। स्वाहा।

२९. शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै। स्वाहा।

३०. शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय। स्वाहा।

३१. शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्। यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम्। स्वाहा।

अथ० ३. १७. १-७;

३२. सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव। यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः। स्वाहा।

३३. घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना। स्वाहा।

अथ० ३. १७. ८ ९;

३४. इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। इदमिन्द्राग्निभ्याम् इदन्न मम

३५. विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्य इदन्न मम।

३६. द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। इदं द्यावापृथिवीभ्याम् इदन्न मम।

३७ स्विष्टमग्ने अभि तत्पृणीहि विश्वांश्च देवः पृतना अभिष्यक्। सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद्धेह्यजरं न आयुः। स्वाहा।

३८. यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम।

अन्य गृह्य तथा सामाजिक कृत्य।

पूर्णाहुतिके पश्चात् खीलों और मिष्टान्नके (बताशेआदि) हुतशेषको यज्ञमण्डपमें उपस्थित जनोंमें वितरण करके भक्षण किया जाय।

अपराह्नमें प्रचलित प्रथानुसार इष्टमित्रोंको मिष्टान्नके उपायन (भेंट) दिये जांय। सायंकालके समय आवास गृहों को सुचारु रूपेण सजाकर स्वसामर्थ्यानुसार दीपमाला की जाय।

अपराह्ण वा रात्रि में स्वसुभीतेके अनुसार समाज-मन्दिर आदिमें एकत्र होकर आर्यसमाजके संस्थापक ऋषि दयानन्दकी स्मृति में सभा की जाय और उनमें ऋषिके गुणानुवाद पर भाषण, लेख और कविताओंका पाठ किया जाय तथा इसी विषय पर मधुर सङ्गीत हो।

—०—

श्री ज्ञानेन्द्र-चरितम्

[दिव्यानन्दमुनिश्रीमेधाव्रताचार्यप्रणीतं खण्डकाव्यम्]

प्रथमः सर्गः ।

ज्ञानेन्द्रस्येन्द्रभक्तस्य वेदरक्तस्य धीमतः ।
विद्यार्थिनां सुबोधार्थं चरित्रं लिख्यते ऽमलम् ॥ १ ॥
मातापितृसुखैर्हीनो दीना दीनेश्वराङ्कवान् ।
कर्मणा स्वगुणैर्बालो यो महत्त्वमवाप्तवान् ॥ २ ॥
आर्याणां गुर्जराणां यो यूनां नृणां निदर्शनम् ।
यथार्थज्ञानसद्वृत्तैः सद्गुरोरर्जितैर्गतः ॥ ३ ॥
वेदधर्मप्रचारार्थं स्वार्थं त्यक्त्वा महामनाः ।
व्यतनोत् पुरुषार्थं यो यावज्जीवं महोदयः ॥ ४ ॥
दयानन्दमहर्षेर्योऽनन्यभक्तो धृतीश्वरः ।
तदादिष्टं जनोद्धारं व्यधाज्ज्ञानप्रसारणैः ॥ ५ ॥
गुर्जरीयवणिग्गोत्रे पवित्रात्मा जनिं गतः ।
दैवेनास्य शिशोश्छत्रं मातापित्रोरपाकृतम् ॥ ६ ॥
संवर्द्धितो दयामय्या कयाचिद् बान्धवस्त्रिया ।
दशमाब्दप्रवेशार्हो बालोऽभूद्रुचिरो यदा ॥ ७ ॥
प्रवेशितस्तदा मुग्धः केनापि ज्ञातिबन्धुना ।
अनाथाश्रम आर्याणां फत्तेसिंहस्मृतौ कृते ॥ ८ ॥
जीवनेति समाख्यातो मातृभाषासुशिक्षणम् ।
सन्ध्याहवनमन्त्राणां पाठञ्चादत्त शिक्षकात् ॥ ९ ॥
गौर्जरीमार्यभाषाञ्च ज्ञात्वा सम्यक् कुशाग्रधीः ।
आंग्लविद्यालये शिक्षामग्रहीन्मेट्रिकावधिः ॥ १० ॥
तत्र विद्यालये मुख्याध्यापकेनास्य सन्मतेः ।
ईशवीयमते वादो बह्वजायत तर्कतः ॥ ११ ॥
परिणामे कुमारेण त्यक्तं तत्रत्यशिक्षणम् ।
भव्यास्तेजस्विनो नूनं सहन्ते नानृतं मतम् ॥ १२ ॥
आर्यानाथाश्रमात्पश्चात् कुमारोऽध्ययने पटुः ।
सूरागुरुकुलं यातः संस्कृताध्ययनाय सः ॥ १३ ॥
भाण्डागारिकताकार्यं जात्वधिष्ठातृकर्म च ।
अकराद् बुद्धिमान् वर्णी स्वाध्यायेन समं तदा ॥ १४ ॥
व्यवस्थाकार्यलग्नत्वादन्तरायं विचिन्त्य सः ।
संस्कृताध्ययने नित्य प्रायाल्लवपुराश्रमम् ॥ १५ ॥
तत्र विद्यालये श्रीमद्दयानन्दोपदेशके ।
कुमारोऽयं प्रविष्टोऽभूदार्यधर्मानुरक्तधीः ॥ १६ ॥
स्वतन्त्रानन्द आचार्यः स्वामिवर्यस्तपोधनः ।
तस्य विद्यालयस्यासीद्दषिभक्तस्तदाऽऽत्मवान् ॥ १७ ॥
वेदज्ञानामृतं धर्मग्रन्थस्थं देवभाषया ।
स्वाद स्वादं परं तृप्तो ज्ञानार्थी ज्ञानिनार्पितम् ॥ १८
आत्मनोऽयं सदाचारैः संकल्पैश्च शुभैर्गुणैः ।
सद्गुरूँस्तोषयामास ब्रह्मचारी सुवीर्यवान् ॥ १९ ॥
व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः सिंहसंहननः सुधीः ।
वेदधर्मप्रचारं स स्वावकाशे भ्रमन् व्यधात् ॥ २० ।
उत्तारयन् कृतौ ज्ञानं गृहीतं तु गुरूत्तमात् ।
कुर्वाणः सफलं नूनं ज्ञानस्येन्द्रत्वमाप्तवान् ॥ २१ ॥
ज्ञानेन्द्रेति समाख्यातो गुरुभिर्गुणवेदिभिः ।
जीवनाभिधविद्यार्थी तत्र विद्यालये पठन् ॥ २२ ॥
सिद्धान्तभूषणाङ्कां तां परीक्षां सुखतस्तरन् ।
भूतोऽयं भूषणं भूमेश्चिकीर्षुर्मङ्गलं नृणाम् ॥ २३ ॥
सिद्धान्तभूषणपदेन विभूषितोऽलम्,
ज्ञानेन्द्र आत्मनि रतो जनतोपकारे ।
दत्तावधान इति सद्गुरुतः सुदीक्षा--
मादाय गुर्जर भुवं समभूषयत्सः ॥ २४ ॥

ज्ञानेन्द्र जी का जीवन-चरित्र ।

श्री ज्ञानेन्द्र जी गुजरात देशमें उत्पन्न हुए थे। आप माता पिताके सुखसे वञ्चित होने पर अपने गुणों तथा कर्मों से ही महत्त्वशाली बने। गुजरातके वणिक् गोत्रमें आपका जन्म हुआ। १० वर्ष की अवस्था में किसी बन्धु ने आपको आर्यअनाथाश्रम में प्रविष्ट करा दिया। पहले आपका नाम 'जीवण जी' था। आंग्ल विद्यालयमें मेट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। उसी विद्यालय में ईसाईमत के सम्बन्धमें प्रधानाध्यापक से विवाद होजाने पर आपने उसे छोड़ दिया। सचमुच तेजस्वी जन असत्य मतको सहन नहीं कर सकते। पश्चात् आप सूरा गुरुकुलमें संस्कृत पढ़नेके लिये गये, पर वहाँ प्रबन्ध सम्बन्धी भार भी लेलेने से पढ़ने में विघ्न होता देखकर, लाहौर जाकर दयानन्द-उपदेशक विद्यालय में प्रविष्ट हुए। वहाँ श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के आचार्यत्व में वेद आदि धर्मग्रन्थों का ज्ञान प्राप्तकर 'सिद्धान्त भूषण' की उपाधि प्राप्त की। उसी समय गुरुओं द्वारा आपका नाम 'ज्ञानेन्द्र' रखा गया। इस प्रकार विद्या प्राप्तकर गुजरात लौटकर अपने देश में वैदिक धर्म प्रचार करना आरम्भ किया।

आर्य-विद्वत्सम्मेलन कलकत्ता

२८ दिसम्बरसे १ जनवरी १९४९ तक चार दिनों में होनेवाले छः अधिवेशनोंमें निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुए—

१. जो महानुभाव संस्कृत भाषणमें समर्थ, आयु कमसे कम २५ वर्ष, आर्यसमाजके दस नियमों और ऋषि दयानन्द प्रदर्शित ५१ सिद्धान्तोंके दृढ विश्वासी, इनकी व्याख्या में ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थोंको प्रमाण मानते हों ऐसे कोई भी विद्वान् वा विदुषी 'आर्य विद्वन्' या 'आर्य विदुषी' माने जायेंगे।

२. आर्यविद्वत्-सन्मेलनकी सब कार्यवाही संस्कृतमें ही हो।

३. आर्यविद्वत्-सम्मेलनको स्थाई रूप देनेका यत्न किया जावे।

४. आर्यसमाज राजनीतिमें भाग लेवे।

५. 'भारतीय लोक संघ' का अभिनन्दन करना निश्चित हुआ।

६. संस्कृत भाषा राष्ट्रोंमें परस्पर व्यवहारमें लानेके लिए 'विश्वभाषा' स्वीकार की जावे।

७. संस्कृत भाषाके प्रचारार्थ यह आर्य विद्वत् सन्मेलन संस्कृत परीक्षाओंका परिचालन करे। उसके लिए एक उपसमिति बना दी जावे।

८. आर्य विद्वत्-सम्मेलनकी वैधानिकता, दृढता तथा स्थिरताके लिए यह सम्मेलन प्रतिवर्ष हुआ करे। परीक्षाओं का परिचालन भी प्रतिवर्ष हो। और विधानादि निर्माण करने के लिए एक उपसमिति बनानेका निश्चय किया जावे।

९. समस्त पाठशालाओं विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा अनिवार्य पढ़ाई जावे।

१०. अखिल भारतीय आर्य विद्वत्-परिषद् एक स्वतन्त्र परिषद् बनाई जावे, जिसकी शाखाएँ प्रत्येक प्रान्त में रहें। विधान निर्माणके लिए उपसमिति बना दी गई। इसका अधिवेशन देहलीमें हो यह भी निश्चय किया गया।

११. इस देशका नाम भारतवर्ष वा आर्यावर्त हो' दोनों नाम यथेष्ट व्यवहारमें लाये जा सकते हैं।

१२. मुद्रित प्रश्नावली तथा अन्य विषयों पर कुछ विचार किया गया, शेष विषयोंपर आगामी परिषद्में विचार हो, ऐसो विचार किया गया। अन्य विद्वानोंके विचारोंका भी संग्रह किया जावे। इस विषयमें एक बार और यत्न करना होगा जिसमें आर्यसमाजके कार्यक्रमकी भावी योजना सम्बन्धी विचार और भी गम्भीरता और दूरदर्शिता से हो सके।

१३. वैदिकधर्म प्रचारादिके लिये आर्योपदेशकों का स्वतन्त्र संघ बनाया जावे।

१४. उक्त सबके विधानादि निर्माणके लिये एक उपसमिति बना दी जावे। इसमें ग्यारह सदस्य निर्वाचित हुये।

आर्य विद्वत्-सम्मेलनकी चार विशेषतायें

१. आर्यविद्वान् मिलकर काम नहीं कर सकते, इस भ्रान्ति का प्रत्यक्षतया निवारण विद्वानों ने परस्पर सहयोगमें आकर तथा प्रायः सर्व सम्मतिसे सब निश्चय करके प्रमाणित किया। यदि ऐसा ही परस्पर सहयोग बना रहा तो आर्यविद्वान् आर्यसमाजके भविष्यको अवश्य उज्ज्वल बना सकेंगे।

२. समस्त भारतमें वेद तथा मीमांसाके अद्वितीय विद्वान् महामहोपाध्याय पूज्य पं० चिन्नस्वामी शास्त्रीजी ने ऋषि दयानन्द कृत वेदार्थको सप्रमाण घोषित किया और ऋषि दयानन्द अभिमत देवता वादके सिद्धान्तको खुले पण्डाल में आर्य-विद्वत् सम्मेलनमें स्वीकृत किया।

३. कलकत्ताके सनातन धर्मी विद्वानोंने संस्कृत साहित्य परिषद्की ओरसे आर्य-विद्वत्-सम्मेलनके विद्वानोंको अपने यहां निमन्त्रित किया। और लगभग ३ घण्टे तक संस्कृतमें जन्मसे वर्ण व्यवस्था—मूर्तिपूजादि विषयमें परस्पर शास्त्रार्थ हुआ। विद्वानोंने बहुत हो उत्तम रीतिसे व्यवहार किया, दोनों ओरके विद्वानोंने बहुत ही प्रेम और सौहार्दसे अपना पक्ष रखा। विद्वानोंकी यह ज्ञान गोष्ठी विवादका रूप न रखती हुई एक ऊँचे स्तर पर की जाने वाली विचार विनियम रूप गोष्ठी थी। जिससे दोनों ओरके लगभग ३५-४० विद्वान् अति प्रसन्न हुए। दृश्य देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि अब भावी भारतमें विद्वान् अपनी उदारतासे इस देश का भविष्य उज्वल करनेमें बहुत कुछ सहायक होंगे। अन्त में उन्हों ने सब विद्वानोंका मिष्टान्न तथा फलादिसे सत्कार किया। श्री० पं० चपला कान्त भट्टाचार्य, सम्पादक आनन्द बाज़ार पत्रिकाका यह सब प्रशंसनीय उद्योग था।

४. आर्य-विद्वत् सम्मेलनके सभापति पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासुका भाषण था। इसमें आर्य समाजके भविष्यके संबन्ध में प्रायः सभी आवश्यक विषयोंपर गम्भीर विचार उपस्थित किया गया था। प्रायः आर्य पुरुषोंकी ऐसी धारणा थी।

(भाषणके मुख्त अंश वेदवाणी वर्ष १ अंक ९, १० ११ में प्रकाशित हो चुके हैं।

—सम्पादक)

शेष विचारणीय विषयोंपर आर्य विद्वान् पुनः एक बार और किसी समयपर विचार करेंगे, जिसकी सूचना अयं जनताको पीछे दी जा सकेगी।

—रमाकान्त व्याकरणाचार्य, संयोजक
आर्य-विद्वत् सम्मेलन, कलकत्ता

—०—

❋ जीवन-पथ ❋

[आचार्य वी० शा० 'सिद्धेश्वर']

पथिक ! तू किस चिन्ता में मग्न?

कार्य-क्षेत्र पड़ा है विस्तृत, फिर क्यों आशा भग्न?
कर कर्त्तव्य सुनिश्चित अपना, उसमें हो संलग्न॥

यात्रा बड़ी विकट है सन्मुख, नहीं सूझता पथ है।
क्या निर्मम जीवन की गाथा, दारुण और अकथ है?

होने दे क्या चिन्ता तुझको, तुझे सदा चलना है।
पश्चात्ताप न करना कुछ भी, नहीं हाथ मलना है॥

भूल न जाना तू अपना पथ, ध्यान इसी का रखना।
मीठे कड़वे जैसे फल हों, है अवश्य ही चखना॥

तू नव युवक, चलाचल निश्चल, तेरा नियम अटल हो।
मत घबड़ा तू, पूरा तेरा मार्ग आज या कल हो॥

चलते चलते वहाँ पहुँचना, तेरा है उद्देश।
चिन्ता नहीं जहाँ पर कुछ भी, जहाँ न पथ है शेष॥

—०—

२० वीं-शताब्दी और वेद !

[लेखक—पं० कृ० च० 'राकेश' सं० सम्पादक]

बीसवीं शताब्दी और वेद ! इन शब्दों में अपने देशके कुछ विद्यार्थी, नवयुवक, तथा अन्य व्यक्ति जिनपर पाश्चात्य सभ्यताका रंग चढ़ा है भड़क उठते हैं। वेदोंका नाम मुँह से निकाला नहीं कि कानों में उंगली डाल ली और कहने लगे, 'अरे यार ! गया तुम्हारे वेदोंका जमाना। माना कि वेद प्राचीन हैं। पन्डित नेहरु ने भी तो इतना ही 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखा हैं, 'और सच बात तो यह है कि मनुष्य-मात्रके दिमाग की सबसे पुरानी कृतियों में हैं। मैक्समूलर ने कहा है कि आर्य जाति के मनुष्य द्वारा कहा गया यह पहला शब्द है'। यह मान लिया परन्तु इससे क्या ? पहले शब्द हैं और पहले ही रहेंगें। अन्तिम तो नहीं हो सकते। बच्चाका पहला शब्द 'अम' उसके लिए पानी बतला सकता है परन्तु वही 'अम' जीवन भर पानी को नहीं बतलाता। फिर वह वाटर, अप, आब जल, पानी, और भी भिन्न भिन्न नामों से जानता और पुकारता है। इसी प्रकार वेद मनुष्य जाति के शिशु काल की बाणी है। २० वीं शताब्दी में जहाँ ग्रन्थों की भरमार है, जहां मनुष्य का मस्तिष्क विकसित होते होते चरम सीमा पर पहुँच गया है वहाँ इस तुतली भाषा और ज्ञान से काम नहीं चलने का। सूट और टाईके सामने, 'दादा की लंगुटिया किस काम की यही तर्क रखा जाता है।

'दादा की लंगुटिया' भूल जाने वाले भलेही इसे भूल जाएँ परन्तु इससे हानि उन्हीं की है। सूट की पैदाइश ही लंगुटिया से हुई है। दादा को भुलाने वाले ही दादा के पुत्रके पुत्र हैं। यदि वह इसको भूल जाना चाहें तो भूल जाएँ। और यह भी तो २०वीं शताब्दीकी देन है। दादा को कौन कहे, दादाके दादा और अन्तिम दामा ईश्वर का ही सफ़ाया कर डाला। धर्म और परमात्मा तो अब केवल 'ए मैटर आफ-टेस्ट' अर्थात् स्वादकी वस्तु रहगये। अच्छा लगे तो खालो अथवा छोड़ दो। जब इस प्रकार ईश्वर की चटनी बना डाली तब क्या कहना। प्रश्न किया जाता है, परमात्मा है कहां ?

उत्तर वेदों से ही लेलो:—

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यंति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥

अथ० १० ८ ३२;

भावार्थ—मनुष्य (अन्ति सन्तं) अति समीप रहने वाले परमात्मा को नही देखता और (अन्तिसन्तीं) समीप व्यापी परमात्मा को छोड़ भी नहीं सकता। (देवस्य काव्य) उस देवका यह काव्य तो देखो (न ममार) न मरता है और (न जीर्यति) न जीर्ण होता है। जब आखों में लगे हुये काजल को ही समीप होने के कारण वह स्वयं नहीं देख पाती तो अति समीप और ओत प्रोत ब्रह्म को ये आखें कैसे देख सकती हैं ? ईश्वरका इन आखों से नहीं देखाजाना ही ता सिद्धकर देता है कि वह अति समीप अर्थात् सर्वत्र है। वह केवल ज्ञान चक्षुसे ही जाना जाता है। वेदोंसे दूर रहने से ईश्वरीय ज्ञान कदापि प्राप्त होने को नहीं है। इसके द्वारा अपनी ही हानि है। उलूक के आंख मूंद लेने से सूर्य तो नहीं डूब जाता। उसीकी आंखें वन्द हो जाती हैं। सूर्य तो प्रकाश देता ही रहता है। ज्ञानके सूर्य वेदों से यदि आंख मूंद लेते हो तो वेदोंका क्या होता है, अज्ञानका परदा तुम्हारी ही आंखों पर पडा रहता है। अन्धे तुम बने रहते हो दुःखके साधनों को सुख का साधन समझ कर जीवन मरणके चक्कर में गोते लगाते रहते हो।

वेद मनुष्यके 'शिशु काल की वाणी' है यदि यह भी मान लो तो तुम्हारे शिशुकाल में दिये गये तुम्हारे माता पिताके द्वारा उपदेश जीवन भर काम आते हैं। माता ने कहा 'अम्बु' बालक ने नहीं बोल सकने के कारण 'अम' कहा तो उसको अक्षरका कुछ ज्ञान तो हुआ और इन्हीं अक्षरों और 'अम' के रूप को बढ़ाकर तथा शुद्ध कर आज 'ग्रन्थों की भरमार' और 'अम्बु, वाटर' आब सब बोलने लगा। 'अम्बु' का 'अम' कहना बालक की नादानी थी। जब वह जान गया तो अपनी माताके सिखलाये अम्बु को कहने लगा। उसी प्रकार आदि सृष्टि में ही उस परमात्मा ने जो सब का माता पिता है, हम सबके लिए ज्ञान दिया है। जो सदा एक रस रहता है, चाहे उसको

अज्ञानता से हम न समझें या अशुद्ध रीतिसे प्रदर्शित करें परन्तु ज्ञान प्राप्त करने पर फिर उसी तरफ लौट जाना है। जिसको तुम अपनी पहुंच कहते हो वह वास्तव में कोई नई वस्तु नहीं है। ईश्वर के भंडार की एक वस्तु है जिसका मूल उसके खजाने वेदों में यदि देखें तो अवश्य ही मिल जायगा।

कवि 'वर्डस्वर्थ' ने प्रकृति के सुन्दर इन्द्र-धनुषका वर्णन करते हुये लिखा कि मैं अपने बचपन की यादगारियों को नहीं भूलना चाहता। 'चाइल्ड इज द फ़ादर आफ़ मैन' ये उसके शब्द हैं। बच्चा ही पिता हो जाता है। बचपन की भावनायें और स्वाभाविक प्रवृत्ति ही युवा और वृद्ध अवस्थामें विकसित होती हैं। बच्चासे युवा होनेपर नाना प्रकारकी पेचीदगियाँ आती जाती हैं। सरलता का स्थान आडम्बर लेने लगते हैं। बचपन का आनन्द जवानी में एक स्वप्न हो जाता है। वह गुलाबी मुसकुराहट चेहरे पर तनाव और ललाटपर रेखाओं में परिवर्तन कर जाती है। उसी प्रकार ज्ञान (जो बचपन के पवित्र आनन्द के समान है) उसको छोड़ कर जब मनुष्य अपनी जवानीके मद (भौतिक आडम्बरों) में चूर होकर लड़खड़ाने लगता है तब वह अपनी शुद्ध बुद्धि को खो बैठता है। उस समय उस बच्चे की बूढ़ी माता के समान वेद भी सब जीवों को दुःखी देखकर कहते हैं— 'बेटा! हमारी बातों को नहीं माना, अपना मनमाना किया, कितना दुःख उठाना पड़ा। अब भी चेतो, हमारी बातों को मानों, मैंने तुम्हारी भलाई के लिए उपदेश दिये हैं। याद करो जब तुम शिशु थे हमारी बात मानते रहे मैं तुम्हें कितना प्यार करती रही, दूध पिलाती थी, गोद में सुलाती थी, किसी प्रकार दुःखी नहीं होने देती थी परन्तु जब से तुम स्याने होगये मुझे भूलगये। तुम्हें सोचने विचारने की शक्ति मिली, तौभी तुम यह न सोच सके कि अपनी माता को न भूलें। आओ, मेरे लाल! आओ हमारी बात मानो। तुम्हें फिर वही आनन्द प्राप्त होगा। तुम जवानी के उन्माद (भौतिकवाद) को छोड़ो और शिशुवत् सरल स्वभाव, प्रसन्न चित्त, अहंकार रहित, सबके प्रिय बनजावो। मैं तुम्हें नहीं भूली हूँ चाहे तुम मुझे भूल कर अपनी क्षति आप करलो।

२० वीं शताब्दी शंकाओं की शताब्दी है! और 'संशयात्मा विनश्यति'। वेद वाक्य नित्य कैसे हैं! यह प्रश्न किया जाता है। वेदान्तका सिद्धान्त है 'शब्द नित्य है। जितने वर्ण, अ, आ, इत्यादि हैं वे उत्पन्न नहीं होते परन्तु अभिव्यक्त होते हैं। एक वस्तु से दूसरी वस्तु बना लेना उत्पत्ति कहलाती है जैसे पीतल से घड़ा, परन्तु अभिव्यक्ति उसकी होती है जो अभिव्यक्ति होने से पूर्व विद्यमान है जैसे घड़े को दीपक द्वारा देख लेना। वर्ण सारी दिशाओं में विद्यमान हैं ही अतएव कण्ठ, तालु, आदि द्वारा केवल उनकी अभिव्यक्ति होती है चूँकि शब्दोंकी उत्पत्ति नहीं होती केवल अभिव्यक्ति होती है। इस कारण शब्द नित्य हुये। वेद आदिज्ञान है तथा 'ऋषि अपने तपोबल से इन अनादि सिद्ध मन्त्रों को देखकर अभिव्यक्त भर कर देते हैं, अतएव ऋषि इन मन्त्रों के द्रष्टा कहलाते हैं कर्त्ता नहीं' (प्रो० राजाराम) इस कारणों से वेद नित्य सिद्ध हुये। वे कोई मनुष्य कृत पुस्तक नहीं हैं बल्कि ऋषियों द्वारा अभिव्यक्त ईश्वरीय ज्ञान हैं जो सदा एक रस और नित्य रहते हैं।

वेद क्यों पढ़ें? वेदों को इस कारण पढ़ें कि पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो। मनुष्य जब स्वयं पूर्ण नहीं तो उसका ज्ञान भी पूर्ण नहीं कहला सकता है। वह तो विकासवाद के अनुसार अनुभव कर रहा है परन्तु क्या कोई मनुष्य पूर्ण ज्ञान अपने से प्राप्त कर सकता है? पूर्ण ज्ञान ईश्वर के पास है और मनुष्य के लिए आवश्यक ज्ञान वेदों के द्वारा परमात्माने देदिया। जगत् के सृष्टि काल को ही ले लीजिए मनुष्य अपने सीमित ज्ञान द्वारा चार हज़ार वर्ष, दस हज़ार वर्ष और इसी प्रकार अनुमान का घोड़ा दौड़ाता रहा। स्वामी दयानन्द जी ने जब वेदों के आधार पर अपनी पुस्तक 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में जगत् की उत्पत्ति हुये 'एक वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हज़ार, नवसौ छहत्तर वर्ष' बतलाया तो इसको माननेके लिए कुछ भारतीय और विदेशी तैयार नहीं थे। किसीने इसको अटकल पच्चू कहा तो किसीने कहा कि वैज्ञानिक सिद्धान्त से अभी यह सिद्ध नहीं हो पाया है इस लिए यह मान्य नहीं। विकासवादी 'प्रो० सोलस, कीथ, शिम्बर, हेकल और डाक्टर चर्चके अनुसार अब तक यही स्थिर था कि मनुष्य को हुये ८२०००० वर्ष हुये और इसीकी अवधि में उसने इतनी उन्नति की' पर जब से मि० जान टी ड ने ६० लाख वर्ष माना तब लोग चकित हो गये।

शेष

प्रो० हेक्सेले एक अरब और आधुनिक विज्ञानवेत्ता एक अरब ६० करोड़, अर्थात् वैज्ञानिक भी दो अरब साल तक पहुँच ही गये। इस प्रकार स्वामी जी द्वारा वेदों के आधार पर बतलाये हुए सृष्टिकाल के निकट आते जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञानके प्रत्येक अंग में वेदों की महत्ता है जिसके अनुसार चलने से हम पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे युवक इस बात को भूल रहे हैं कि २० वीं शताब्दीके चक्करमें पड़कर जिन बातोंको वे छोड़ रहे हैं उन्हीं को इसी शताब्दीमें उन्नति करनेवाली जातियाँ अपना रही हैं। हम वेदों को छोड़ दें परन्तु इसी शताब्दी में सैकड़ों युरोपियन विद्वानों ने अपना समस्त जीवन ही वेद के अनुसन्धानमें लगा डाला है। वे सदा अनुशीलन में लगे हुए हैं। प्रतिदिन उनकी रुचि इस ओर बढ़ती जा रही है। अठारहवीं शताब्दीमें ही फ्राँस के प्रख्यात लेखक 'वालटेयर' ने अपने एक लेख में यजुर्वेदकी बड़ी प्रशंसा की है फिर उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें ही कोलब्रुक साहबने 'एशियाटिक रिसर्चेज़' नामक पत्रमें हिन्दुओंके धार्मिक ग्रन्थ-वेद शीर्षक देकर अपना लेख दिया और अपनी जातिमें वेद पढ़नेकी रुचि पैदा करनेकी चेष्टा की। फ्रांस का नामी विद्वान् इउजेनबर्नफ़ ने पेरिसमें वेद शिक्षा का केन्द्र सा खोल रखा था। फ्रांससे वेदोंका प्रचार युरोप में बढ़ा और इन्हीं बर्नफ़के शिष्य मैक्सम्यूलर और रुडोल्फरोठ ने आगे चलकर वैदिक साहित्यमें नाम पैदा किया। ए० वेबरने भी आधुनिक वैदिक अनुशीलनमें बड़ा काम किया है। उपर्युक्त विद्वानोंके अतिरिक्त दूसरे पाश्चात्य विद्वानों ने जैसे गेल्डनर, ओल्डेनबर्ग' मैकडानल, कीथ, ग्रिफिथ आदिने वैदिक साहित्यमें काफ़ी काम किया है। इन पाश्चात्य विद्वानोंने वेदोंके प्रायः सभी पहलुओंको देखा विचारा और उनपर अपनी राय प्रकट की है। उन्होंने वेदों का अनुवाद किया, कोषोंका निर्माण किया, वैदिक व्याकरण की रचना की, वैदिक साहित्यकी सूचियाँ तैयार कीं, वेदके छन्दोंपर कार्य किया और भिन्न भिन्न अनुसन्धान किये हैं। आज २० वीं शताब्दीमें भी प्रो० ओल्डनबर्ग और प्रो० कीथ के अनुवादका अमेरिका और यूरोपमें खूब प्रचार किया गया। प्रो० आर्नाल्डकी 'वैदिक मीटर' नामक पुस्तक भी १९०५में प्रकाशित हुई और इसमें ऋग्वेदके छन्दोंका विचार प्रो० आर्नाल्डने किया है। इस प्रकार ध्यान देने से पता चलता है कि पाश्चात्य सभ्यताके नामपर अपनी सातभ्य को बलिदान करनेवाले भारतीय अपनी वेदमाताको जितना ही ठुकरा रहे हैं उतनी ही तेज़ीसे पाश्चात्य जन उसे अपना रहे हैं।

हम काफी भूल कर चुके हैं। अब भी लगनसे वेदों का मनन करें जिससे हमारा कल्याण हो सके। मानसिक दासताको त्याग देनेसे ही आत्मिक उन्नति हो सकती है। पहले तो संसार भारतके पीछे लगा रहा और सीखता रहा परन्तु अब वे दिन आ गये जब, जिनको भारतने सिखलाया था वहीं आज गुरु होकर उपदेश करने आ रहे हैं। इस दुर्भाग्यका कारण एकमात्र वेदोंको छोड़कर अलग हो जाना ही है। जब खूँटा एक नहीं रहा तो सब पृथक् होकर अपनी अलग खिचड़ी पकाने लगे। सबके सुखमें अपना सुख देखनेके बदले स्वार्थी बन बैठे। हमको तो वेदों की तरफ लौटना ही एकमात्र विश्वशान्तिका उपाय प्रतीत होता है। ऋग्वेद १।४०।६ का यह आदेश हैः—

तमिद्वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्। इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत्।

(देवाः) हे उत्तम पुरुषो (विदथेषु) सभी शुभ कर्मोंमें उसी (शम्भुवम्) सुखकारी (अनेहसम्) दोषरहित (मन्त्रम्) वेद मन्त्रोंको (वोचेम) सुनो और सुनावो (नरः इमां च वाचम् प्रतिहर्यथा) हे मनुष्यो इस परमात्माकी वाणीकी सदा कामना और उपासना करो (विश्वा इत् वामा) सब ही माननीय ज्ञान तुम लोगों को (अश्नवत्) प्राप्त होंगे। इस लिए मनुष्य जाति को अपने कल्याणके लिए वेदोंकी तरफ लौटना होगा। वेद ज्ञान मनुष्यके ज्ञानकी तरह परिवर्तित होनेवाला अधूरा ज्ञान नहीं है। महात्मा नारायण स्वामीके शब्दोंमें 'वेदोंका यह सार्वजनिक सिद्धान्त है, जो तीनों कालोंमें एक जैसी उपयोगिता रखता है। ज्ञान उपलब्ध करके उसको कार्य में परिणित करना ही मनुष्य जीवनका बड़ेसे बड़ा उद्देश्य है। इस लिए वेद नित्योपयोगी (अप-टू-डेट) समझे जाते हैं।' इस प्रकार वेद 'मनुष्यके शिशुकालकी वाणी नहीं बल्कि सदा एक रस रहने वाला ईश्वरीय ज्ञान है जिसके द्वारा प्रत्येक शताब्दीमें-प्रलय काल तक-मनुष्य जाति लाभ उठाती चली जायगी।

दीपावली नवसस्येष्टि तथा ऋषिनिर्वाण पर्व की पद्धति में विनियुक्त, पृष्ठ ३७-३८ पर मुद्रित, संख्यानुसार क्रमशः

मन्त्रों की संक्षिप्त व्याख्या

(आचार्य श्री वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए०, काव्यतीर्थ, काशी)

१. (मृत्यो) हे मौत, (यः ते स्वः) जो तेरा अपना रास्ता, (देवयानात् इतरः) देवमार्ग से भिन्न है, (पन्थां परं अनुपरेहि) उस रास्ते से तू दूर हटजा। (चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि) आँखवाली और सुननेवाली तुझसे मैं कह रहाहूँ कि (नः प्रजां उत वीरान् मा रीरिषः) हमारी प्रजा तथा विशेषकर वीरों को तू नष्ट मत कर।

ऋग्वेद दसवें मण्डल के अठारहवें सूक्तके इस पहले मन्त्र तथा आगेके ४ मन्त्रों का ऋषि (अर्थ द्रष्टा) 'संकुसुक यामायन' नामक है, और इस मन्त्र तथा अगले ३ मन्त्र का देवता [प्रतिपादन किया गया विषय] 'मृत्यु' है। इन पाँचों मन्त्रों का स्वर 'धैवत' है और छन्द 'त्रिष्टुप्' (११-११ अक्षरों के चार चरण=४४ अक्षर) है किन्तु केवल इस पहले मन्त्र में, क्योंकि दूसरे चरण में एक अक्षर कम है, अर्थात् केवल १० हैं अतः इसका नाम 'निचृत् त्रिष्टुप्' है। नियत अक्षरों से एक अक्षर कम होने पर उस छन्द के नाम के साथ 'निचृत्' विशेषण लगा दिया जाता है।

क्योंकि वेद ईश्वरीय, अमर तथा वैज्ञानिक 'काव्य' है अतः अमर कवि परमात्मा ने यहाँ सूक्ष्म भाव रूप 'मृत्यु' को भी पुरुषरूप में सम्बोधन करके वर्णन किया है। यह काव्य का एक अलङ्कार है जो अंग्रेजी जैसी भाषा में भी 'परसानिफिकेशन' के नाम से उत्कृष्ट माना जाता है। वेदों के तो अधिकांश मन्त्रोंमें यह अलङ्कार पाया जाता है।

मन्त्र का भाव यह है कि विद्वानों के मार्ग पर चलने से मृत्यु का भय दूर हट जाता है। हम सब का मानसिक बल, विल पावर, ऐसा दृढ़ हो कि हम असमय आई हुई मौत से दूर हट जाने को कह सकें। वेदों में दो मार्ग बतलाये हैं, एक देवयान [मोक्ष का मार्ग] और दूसरा पितृयान [जन्म-मृत्युका मार्ग]। यदि देवयान के लिये मृत्यु आरही है तो उसका हम स्वागत करें और यदि पितृयान में ले जाने के लिये असमय में ही आरही है तो उसका, जब तक हो सके, दूर हटे रहना ही अच्छा है। आँखों से संसार में ईश्वरीय नियम देखने वाले और कानों से विद्वानों की शिक्षा सुनने वाले, समझदार मनुष्यों को चाहिये कि वे कोई ऐसा काम न करें जिससे उनकी तथा उनके साथ समस्त प्राणियों की और विशेषतः वीर पुरुषों की अचानक असावधानतासे अपमृत्यु हो जावे।

२. हे मनुष्यो, (मृत्योः पदं योपयन्तः) मौत के पैर को दूर ढकेलते हुए, (द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः) अपनी लम्बी आयु को और अधिक लम्बी करते हुए, (यदा एत) जब तुम चलोगे तब (प्रजया धनेन आप्यायमानाः) सन्तान और धन के साथ वृद्धि तथा सन्तोष को प्राप्त करते हुए (शुद्धाः पूताः यज्ञियासः भवत) बाहर से शुद्ध अन्दर से पवित्र तथा पूजनीय बनोगे।

३. (इमे जीवाः मृतैः वि आ ववृत्रन्) ये जीवित मनुष्य मरे हुओंसे घिरे हुए नहीं हैं इसलिये (नः देवहूतिः अद्य भद्रा अभूत्) हमारी ईश्वरभक्ति आज कल्याणकारिणी हुई। (द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः) बहुत अधिक आयु धारण करते हुए हम (नृतये हसाय प्राञ्चः अगाम) नाचने और हसने के लिये आगे चलें।

वेदों ने नाचने, हसने की अनुमति तो दी किन्तु तभी जब कि देश में भूख से मरने वाले लोग न रहें, देश सम्पन्न हो और ईश्वर भक्ति करके मनुष्य दीर्घजीवी बन चुके हों।

४. (जीवेभ्यः इमं परिधिं दधामि) मैं परमेश्वर जीवों के लिये इस मर्यादा को बाँधता हूँ कि (एषां अपरः नु एतं अर्थं मा गात्) कोई नीच भी इस बात का उल्लंघन न करे, सभी (पुरूचीः शतं शरदः जीवन्तु) श्रेष्ठ सौ शरद् ऋतुओं अर्थात् वर्षों तक जियें, और (मृत्युं पर्वतेन अन्तर्दधताम्) मौत को पुरुषार्थ से दबालें।

कुछ विद्वानोंने इस मन्त्रसे यह सिद्ध करनेकी असफल चेष्टा की है कि प्राचीन वैदिक आर्य और उनके पूर्वज शवों को गाड़ कर उन पर समाधि बना देते थे और पत्थरों से उसे पाट देते थे कि जिससे मृत-व्यक्ति फिर भूत बनकर उनके पास न आजाये।

५. (यथा अहानि अनुपूर्वं भवन्ति) जैसे एक दिन के पीछे दूसरे दिन आते हैं, (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) जैसे ऋतुएँ ऋतुओं के साथ ठीक प्रकार चलती हैं, और (यथा अपरः पूर्वं न जहाति) जैसे अगली श्रृंखला पिछलीको नहीं छोड़ती (एवा धातः एषां आयूंषि कल्पय) इसी प्रकार हे विधाता इन मनुष्यों की आयु की योजन करो। भाव यह है कि सभी पूरी आयु भागें। बड़ों के सामने कोई छोटी आयुवाला न मरे।

६. हे जीव! (आयुष्मतां आयुष्कृतां) बड़ी आयु-वाले और बड़ी आयुको बनानेवालों के समान (प्राणेन जीव) प्राणशक्तिके साथ, ज्ञान और शक्ति सामर्थ्य से तू जी, (मा मृथाः) अपमृत्यु को न प्राप्त हो। (अहं सर्वेण पाप्मना वि) मैं सब प्रकार के पाप से दूर रहूँ, (यक्ष्मेण वि तपेदिक आदि सब रोगों से दूर रहूँ, और (आयुषा सम्) पूरी आयु से सम्पन्न होऊँ।

७. (ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युं उपाघ्नत) ब्रह्मचर्य रूपी तप से विद्वान् लोग अपमृत्यु को जीत लेते हैं। (इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण) जीवात्मा निश्चय ही ब्रह्मचर्य द्वारा [देवेभ्यः स्वः आभरत्] इन्द्रियों से तथा प्राकृतिक पदार्थों से सुख को प्राप्त किया करता है।

८. सैकड़ों शस्त्रों की शक्ति रखने वाले, सैकड़ों प्रकारके पराक्रम वाले, सैकड़ों प्रकार की रक्षा करने वाले परमेश्वर की हम, शक्ति और वीर्य की प्राप्ति तथा अपनी रक्षा के लिये, भक्ति करें। वही ऐश्वर्य शाली हमें सौ वर्ष तक जीवित रख सकता है और हमारी सब बुराइयों को दूर कर सकता है।

९. विद्वानों के चलने योग्य जो चार मार्ग [संभवतः चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास] हैं उनको जो ठीक प्रकार पालन करता है उसी के लिये सब इन्द्रियाँ तथा सांसारिक वस्तुएँ सुख देने वाली होती हैं।

१०. वसन्त, गरमी, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर—ये सब ऋतुएँ हमारे लिये सुखदायी हों। उन सब ऋतुओं के अनुकूल आहार-विहार करते हुए हम सब सौ बरस तक निर्भय और सुखी रहें।

११. 'युगं भवेद् वत्सरपञ्चकेन' इस ज्योतिष के वचन के अनुसार एक विशेष प्रकार के युग के विशिष्ट भाग इद्वत्सर, परिवत्सर और संवत्सर हैं। इन में हम उचित आहार-व्यवहार करें। यज्ञ करने वाले विद्वानों की अच्छी मतिके अनुसार चलकर हम सदा सुरक्षित रहें।

१२. पृथिवी, द्यौ लोक, दिशायें (पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण,) उपदिशायें [आग्नेय, वायव्य, नैऋत्य, ईशान] जिस इन्द्र [सूर्य, विद्युत्, राजा] के प्रताप से प्रकाशित रहती हैं उसका मैं सन्मान करता हूँ, हमारे शस्त्र कल्याण-कारी हों।

१३. हे दुष्टों, आपत्तियों तथा रोगों के नाशक इन्द्र, हमारे इस श्रेष्ठतम कर्म में जो कुछ कमी रह गई है वह सब पूर्ण हो। हमारी आयु सौ वर्ष की हो।

१४. इस संसार में समस्त प्रजा के लिये धन, ऐश्वर्य भूमि, वर्षा, बड़ी आयु, श्रेष्ठता तथा शोभा प्राप्त हो। इन्द्र की पत्नी [राज्यलक्ष्मी तथा सूर्य और विद्युत् की प्रभा] को लक्ष्य में रखकर यह आहुति दी जारही है। इस में मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है।

१५. जिस इन्द्र-पत्नी सीता (सूर्य अथवा राजाके द्वारा पालित पत्नी रूप हल का फाल तथा हलसे बनाई रेखा) के वर्तमान होने पर वैदिक तथा तथा लौकिक दोनों प्रकारके कामों की सम्पन्नता होती है उसका हम उचित सन्मान तथा प्रयोग करते हैं वह मेरे दुःख दूर करने वाली हो।

१६. इस सीतायज्ञ [कृषि कर्म] में मैं ध्रुवा [हलके नीचे के मुख्य भाग] का उचित उपयोग करता हूँ; वह हमारे लिये सुखकारी हो। वह ध्रुवा श्रेष्ठ घोड़ों तथा बैलों से युक्त, अच्छा अन्न उत्पन्न करने वाला होकर तथा सदा कार्य में लगकर [अन्न उत्पन्न कर] प्राणियों की रक्षा करती है।

१७. सीता [हलका फाला तथा हलकी पद्धति] को लक्ष्य में रखकर यह आहुति है। सीता का सच्चा उपयोग हो

१८. प्रजा [जनता] को लक्ष्य में रखकर यह आहुति है। प्रजा के प्रति सत्य क्रिया हो।

१९. शमा [शान्ति तथा सुख] के लिये सत्य क्रियाएँ हों। यह आहुति इसीके लिये है।

२०. भूति [सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य] प्राप्त करने के लिये सत्य क्रिया हो। उसी को लक्ष्य में रखकर यह आहुति है।

२१. (व्रीहयः) चावल (यवाः) जौ (माषाः) उरद (तिलाः) तिल (मुद्गाः) मूंग (खल्वाः) चने (प्रियङ्गवः) कंगुनी (अणवः) बारीक चावल (श्यामाकाः) समा, साम अन्न (नीवाराः) पसाई के चावल (गोधूमाः) गेहूँ (मसूराः) मसूर— ये सब और इनसे सम्बन्ध तथा समानता रखने वाले अन्य सब अन्न (मे यज्ञन कल्पन्ताम्) मुझे सब अन्नों के दाता परमेश्वर से तथा कृषिरूपी यज्ञ से सिद्ध किये हुए प्राप्त हों।

२२. (नः वाजः) हमारा अन्न [तथा शास्त्र-ज्ञान और वेग] (सप्त प्रदिशः) ७ लोक लोकान्तरों को (वा परावतः चतस्रः अवतु) और दूर तक चारों दिशाओं को पालन करे! (इह विश्वैः देवैः धनसातौ वाजः नः अवतु) इस लोक, पृथिवी, देश में सब विद्वानों के साथ धन के विभाग करने में अन्न आदि पदार्थ हम सब को प्राप्त होवें तथा हम सब की रक्षा करें।

२३. (अद्य वाजः नः दानं प्रसुवाति) आज तथा सदाही अन्न हमारे लिये दान की शक्ति को उत्पन्न करता है, (वाजः ऋतुभिः देवान् कल्पयाति) अन्न तथा वेग रूपी गुण ऋतुओंके द्वारा अच्छे अच्छे गुणों को प्राप्त कराता है, (वाजः हि मा सर्ववीरं जजान) अन्न ही मुझको अति बलवान् कर देता है, मैं (वाजपतिः विश्वाः आशाः जयेयम्) अन्न का स्वामी होकर सब दिशाओं को जीतने की शक्ति प्राप्त करूँ।

२४. (वाजः हविषा नः पुरस्तात् उत मध्यतः वर्द्धयाति) अन्न, देने लेने और खाने से, हमको पहले की सामान्य दशा से मध्यम दशा [औसत] तक और उससे आगे भी [उत्कृष्ट अवस्था तक] बढ़ाता है, (वाजः देवान्) अन्न दिव्य गुणों को भी बढ़ाता है; (वाजः हि मा सर्ववीरं चकार) अन्न ही मुझको सबसे अधिक वीर कर देता है, (वाजपतिः सर्वाः आशाः भवेयम्) अन्न का स्वामी होकर सब आशायें हो जाऊँ।

२५. इस मन्त्र से आगे ३३ संख्या ९ तक मन्त्र अथर्ववेद के कृषिसूक्त के हैं। इनमें कृषिविद्या के साथ२ योग द्वारा ब्रह्मप्राप्तिका उपदेश भी किया गया है। यहाँ पर दीपावली पर्व के नवसस्येष्टि [नये अनाज के यज्ञ] में उपयोगी केवल एक अर्थ ही दिया जाता है।

यह मन्त्र ऋग् १०. १०. १४, में और यजु १२. ६७, में भी है। ऋषि, देवता तथा पाठमें भेद है।

(देवेषु धीराः कवयः) विद्वानोंमें धीरज रखनेवाले चतुर मनुष्य (सुम्नयौ) सुखप्राप्त करनेवाले खेतमें (सीराः युञ्जन्ति) हलों को जोड़ते हैं और (युगाः पृथक् वि तन्वते) जुओं को अलग २ बैलोंके कन्धों पर रखते हैं।

२६. [सीराः युनक्त] हलों को जोड़ो, [युगाः वितनोत] बैलों को हल के जुओं में लगाओ, [इह कृते योनौ बीजम् वपत] यहाँ तय्यार खेत में बीज को बोओ। [विराजः श्रुष्टिः सभराः असत्] जब अन्न की सीस, सीट्टा, बालें अन्न से भर जायें तब [नेदीयः इत् पक्वं सृण्यः आयवन्] कुछ काल पश्चात् ही पके अन्न को हँसुओं से काटकर प्राप्त करो।

यह मन्त्र यजु १२. ६८. तथा ऋग् १०. १०१. ३. में कुछ भिन्नता से है।

२७. [पवीरवत्, सुशीमम् सोमसत्सरु लाङ्गलम्] फालीसे युक्त, सुख का उत्पादक, अन्न स्थापन के लिये चलाया गया हल [अविम् प्रस्थावद् रथवाहनम्] रक्षा करने वाली, यात्राका आधार, सवारियों तथा घोड़ों आदि को वहन करने वाली [पीवरीं प्रफर्व्यम् च] स्थूल हल चलाने योग्य [गाम्] पृथिवीको [उद् वपतु इत्] खोदकर उखाड़ कर कृषियोग्य करें।

२८. [इन्द्रः सीतां निगृह्णातु] सूर्य हल की पद्धति को किरणों द्वारा ग्रहण करे अथवा राजा हल के कर को ग्रहण करे [तां पूषा अभिरक्षतु] उस हल की रेखा की वह पूषा=पुष्टि कारक हो कर रक्षा करे अथवा 'पूषा-भागदुह' नामक अधिकारी कृषि तथा अन्न आदि की रक्षा करे। [पयस्वती सा नः उत्तरां उत्तरां समाम् दुहाम्] जल से सींची जाकर वह हल की पद्धति हमारे लिये प्रति वर्ष अन्न प्राप्त कराये।

२८ संख्या वाले इस मन्त्र से ३२ संख्या तक ५ मन्त्र ऋग् ४. ५७. में भी कुछ भिन्नताके साथ वर्त्तमान हैं।

२९. (सुफालाः शुनं भूमिं वि तुदन्तु) अच्छे फाले, हल के नीचे लगीं लोहे की तेज़ हलिएँ सुखपूर्वक अच्छी तरह भूमिको खोदें (कीनाशाः शुनं वाहान् अनु यन्तु) किसान सुखपूर्वक बैलों के पीछे चलें। (शुनासीराः) वायु और सूर्य अथवा सुख से हल चलाने वाले किसान (हविषा तोशमाना) घी आदिसे सन्तुष्ट होकर अथवा जल से पृथिवी को अच्छी तरह सींच कर (अस्मै सुपिप्पलाः ओषधीः कर्तम्) इस ससार के लिये अच्छे फल वाले अन्न आदि को उत्पन्न करें।

३०. [वाहाः शुनं] हल खेंचने वाले बैल और घोड़े सुखी हों, [नरः शुनं] हाँकने वाले किसान सुखी हों [लाङ्गल शुनं कृषतु] हल अच्छी प्रकार खेत को खोदें। [वरत्राः शुनं बध्यन्ताम्] रस्सियाँ सुखसे अच्छी तरह बाँधी जायें। [अष्ट्राम् शुनं उदिङ्गय] चाबुक=पैना को सुखपूर्वक ऊपर उठाकर चलाओ।

३१. [शुनासीरा इह मे जुषेथाम्] हे वायु और सूर्य तुम दोनों अनुकूल होकर रहो। [दिवि यत् पयः चक्रथुः

आकाश में जो जल तुमने उत्पन्न किया है [तेन इमाम् उपसिञ्चतम्] उससे इस भूमि को सींचो।

३२. सीते त्वा वन्दामहे=हे हल और उसकी पद्धति तेरा हम वर्णन करते हैं, सुभगे अर्वाची भव=हे उत्तम पुष्टिकारक! तू इस प्रकार प्रत्यक्ष, अच्छे प्रकार समझी और प्रयुक्त की जाये कि यथा नः सुमनाः असः=जिस प्रकार हमारे लिये सुन्दर हो और यथा नः सुफलाः भुवः=जिस प्रकार हमारे लिये अच्छे अन्न और फलों को देने वाली हो सके।

३३. सीता=हल में लगी फाली अथवा हलकी पद्धति घृतेन मधुना समक्ता=घी और शहद वा शकर से संयुक्त अथवा मीठे जल से सींची हुई हो और विश्वैः देवैः मरुद्भिः अनुमता=विद्वानों तथा वैश्य आदि सभी मनुष्यों से स्वीकृत हो। सीते सा ऊर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना=हे सीते! वह पुष्टिकारक अन्न देने वाली घी दूध आदि से सब को तृत करती हुई तू पयसा नः अभि आ ववृत्स्व=पुष्टिकारक अन्न और जल के साथ हमारे खेत में सब ओर विद्यमान रहे।

३४. इन्द्र और अग्नि को लक्ष्य में रखकर सत्य क्रियाहो। यह आहुति इसी लिये है मेरे लिये नहीं।

३५. सब देवों विद्वानों तथा प्राकृतिक शक्तियों के प्रति सत्य क्रिया हो। इसी को लक्ष्यमें रखकर यह आहुति है। यह मेरे लिये नहीं।

३६. द्यौलोक और पृथिवी दोनोंके प्रति हमारी सत्य क्रियायें हों। यह आहुति इसी का ध्यान दिलानेके लिये है, अपने स्वार्थके लिये नहीं।

३७. हे प्रकाशस्वरूप भौतिक अग्ने तथा परमात्मन्! आप हमारे समस्त अभीष्ट कर्मों को सिद्ध कीजिये। हमारे लिये सुगम मार्ग का निर्देश कीजिये जिस से हमारी आयु पूर्ण हो तथा वृद्धावस्था में भी हम हृष्ट पुष्ट रहें।

३८. इस यज्ञ आदि कार्य में जो आवश्यकता तथा विधान से अधिकता अथवा कमी की गई हो हमारी अभीष्ट कारक अग्नि उस सब को अच्छे प्रकार कल्याणकारी बनावे। कामनाओं की पूर्ति करने वाले अग्नि को लक्ष्य में रखकर ही यह प्रायश्चित्तरूपी आहुति दी जारही है। भौतिक अग्नि अपने प्रयोग द्वारा तथा परमेश्वर अपनी कृपा से हमारी सब शुभ कामनाओं को पूरा करे। हम सब सत्य क्रियायें करें। यह उसी अग्नि को लक्ष्य में रखकर आहुति है केवल अपने स्वार्थके लिये नहीं।

—o—

दीपमाला और महर्षि मोक्ष

दीपावली का पर्व बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसको शारदीय नवसस्येष्टि भी कहते हैं। यह नए अन्न से यज्ञ करने का त्यौहार है। वर्षा अब समाप्त हो चुकी और नमी के कारण जो रोग इत्यादि फैले थे उनका अब अंत हो गया। आज यज्ञों के द्वारा रोगों को और वर्षा काल की कमी को हटाया जाता है। आज हर भारतीय गृह चूना अथवा मृत्तिका के लेपन से श्वेत पवित्र रूप धारण किए हुए है सर्वत्र दीप जल रहे हैं, सब कुछ मनोहर दीख पड़ता है। सब के लिये इस पर्व का बड़ा महत्व है।

परन्तु इस दीपमाला की रात्रि एक विशेष घटना के कारण और भी महत्त्वपूर्ण हो गयी है। आज ही वह आदित्य ब्रह्मचारी, वेदोंके अद्वितीय विद्वान कर्मयोगी सार्वभौम धर्मोपदेष्टा सन्यासी भारतदेशहितैषी आचार्य महर्षि दयानन्द हंसते हंसते अपने नश्वर शरीर को त्यागकर बन्धनों से मुक्त हो, उस परमात्मा के आनन्दस्वरूप का संयोग प्राप्त करने के लिये हमसे पृथक् हुये थे।

स्वामी जी को विष

श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती जी को किसीने ज़हर दिया था या उन को नहीं दिया गया था? यदि उन को ज़हर दिया गया तो किसने दिया था? कल्लू नामक किसी व्यक्ति ने दिया था अथवा ज़हर देने वाले का नाम जगन्नाथ था? उन्होंने जगन्नाथको २००) रुपया दिया था कि वह भाग जाय, नहीं तो पकड़ा जायगा और फांसी पायेगा—इस प्रकार की बातें श्री स्वामी जी के जीवन चरित्रों में मिलती हैं।

सन् १९४१ ई० की बात है कि मैं उन स्थानों के विषयमें ठीक-ठीक जाननेका इच्छुक हुआ था जो स्वामी जी द्वारा पदारोपित हुये थे। इसी सिलसिलेमें श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी आर्य होत्री वैदिक धर्म विशारद, पोस्ट बिलराम ज़िला एटा ने अपने २०-८-४१ ई० के पत्र में मुझे पूछा —"डाक्टर अलीमरदान खां, जो महाराज जोधपुरके राज डाक्टर थे, स्वामी जी के ज़हरका इलाज करते रहे। यही

ज़हर दिलवानेमें रण्डीके मददगार रहे और बजाय दवा के ज़हर ही देते रहे आखिर सड़ कर फ़ौत हुये.......... अगर उनके मुतअल्लिक (सम्बन्धमें) कुछ मालूम करना हो तो तहरीर फरमाइयेगा।"

उक्त लेखके आधारपर मैं ने श्री पण्डित जी से डाक्टर अली मरदान खां के विषय में पूछा तो उन्होंने १५-९-४९ ई० के पत्रमें मुझे लिखा "......डा० अली मरदान खां मौज़ा चनी, परगना इस्लाम नगर, ज़िला बदायूँ के रहने वाले थे। चनी ग्राम बदायूँ से बहजोई ज़िला मुरादाबाद को जानेवाली कच्ची सड़कपर बदायूँ से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग २१ मीलपर इस कची सड़क से उत्तर को ३ मील हटकर है। उन्होंने जोधपुर राज्य में श्री स्वामी जी महाराजका इलाज किया था।

जोधपुर राज्य में पण्डित......पुष्करना ब्राह्मणको, जो उस समय राज्यके उच्च अधिकारी घमण्डी पौराणिक ब्राह्मण थे, राज्यसे जागीर प्राप्त थी।......इन पण्डित जी ने ७०० तथा दो रण्डियोंने ५००-५०० कुल १७०० रुपया डाक्टर साहब को इस निमित्त दिया था कि स्वामी जी को विष दिया जावे। अतः औषध के स्थानमें निरन्तर विष ही दिया जाता रहा। जब डाक्टर साहब अन्तिम बार बीमार हुये तो शरीर में कीड़े पड़ गये थे। सड़ांद आती थी। तब अपनी ससुराल मौजा मुबारकपुर माफ़ी (जोबिलरामसे दो मील पश्चिम की ओर है) में स्वयं रोते रोते कहा था कि उपरोक्त प्रकार जो मैं ने स्वामी जीके साथ विश्वासघात किया था आज यह फल उसका भोग रहा हूँ।"

डाक्टर साहब की मृत्यु की तारीख ९ मई सन् १९१७ ई० मुझे बतलाई गई है। इस के सिवा मुझे यह भी बतलाया गया है कि महाराज जोधपूर को जब पता चला तो पण्डित······जी की जागीर ज़ब्त करली थी।

सन् १८८३ ई० में २९ सितम्बर व ३० सितम्बर की बीच वाली रात्रि में उनको विष दिया गया था। ३० सितम्बर से वह बीमार हुये और १६ अकतूबर तक डाक्टर अलीमरदानखां ने दवाइयां दी थीं।

अब कुछ बातें विचारणीय यह भी हैं:—

१. डा० अलीमरदानखां तीसरे दरजे के हास्पिटल असिस्टैंट थे किन्तु पहले दरजे के खुशामदी······ थे। इसी कारण उन का अच्छा प्रभाव जोधपूर में था।

२. श्री स्वामी जी ने आज के दो पत्र २० सितम्बर से एक दुर्गाप्रसाद जी (फर्रुखाबाद) के नाम और दूसरा जालिम सिंह जी ग्राम रुधनी जिला एटा यू० पी० के नाम है। दोनों में उन्होंने लिखा है कि कहार नौकर चाहिये। जोधपूर ऐसे स्थानमें उनको नौकर की कमी हो! इससे प्रतीत होता है कि जितना ध्यान उन के लिये राज्य की ओरसे होना चाहिये उतना ध्यान २० सितम्बर से पूर्व ही अवश्य कम हो गया था।

३. स्वामी जी के २८ सितम्बर के लिखे पत्रसे स्पष्ट है कि उन्होंने पहली अक्तूबर को जोधपूर छोड़ने का विचार किया था।

निदान बातें चाहे जो हों हम को चाहिये कि हम स्वामी जीके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बातों के निमित्त उचित ध्यान दें। उन का एक जीवन चरित्र काफ़ी छान बीन के पश्चात् तैयार होना चाहिये। अभी कुछ न कुछ सामग्री और प्राप्त हो सकती है अन्यथा बड़ी कठिनाई होगी। उन के हक में विरोधियों को विष फैलाने का और अवसर मिलेगा।

हम संस्था के लिये, किसी अन्य कार्य के लिये चन्दा कर सकते हैं किन्तु स्वामी जी के जीवनचरित्र के विषयमें केवल प्रशंसा करना ही अपना धर्म समझते हैं। ईश्वर करे ऋषिभक्त वैदिक धर्मी इस ओर उचित ध्यान दें।

—प्रो० महेश प्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल

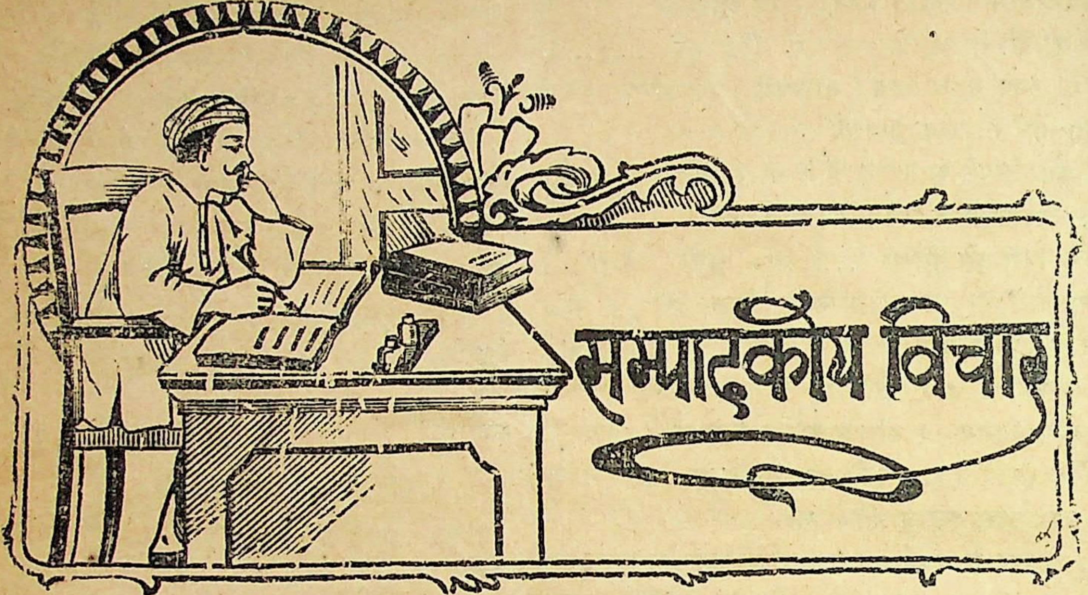
—०—

साहित्य समालोचना

'दयानन्द-सन्देश' का स्वराज्य अंक

सम्पादक—आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री तथा पं० श्री वेदबन्धु शर्मा एम० ए० कार्यालय—दयानन्द सन्देश, ईदगाह-सराय, नई दिल्ली। वार्षिक मूल्य ६) स्वराज्याङ्क ४)।

दयानन्द सन्देश का स्वराज्य अङ्क भारत के द्वितीय स्वराज्य दिवस के अवसर पर प्रकाशित हुआ यह तीन दर्जन श्रेष्ठ लेखों का एक उत्तम विशेषांक है। इस में भारतके प्रसिद्ध आर्य विद्वानों को उच्चकोटि के लेख हैं। इस विशेषांक के द्वारा राजनीति सम्बन्धी उपयोगी तथा आवश्यक विषयों पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। इसके अध्ययन से जनता को लाभ होगा।



मेरा सम्पादकत्व

विद्वानों तथा जनतासे पूर्ण सहयोगकी प्रार्थना

एक वर्ष पूर्व जब मैं काशीमें था और 'वेदवाणी' मासिक पत्रिकाका आरम्भ हुआ, विद्वद्वरप्रिय पं० वीरेन्द्रजी शास्त्री साहित्याचार्य, एम० ए० ने बहुत आग्रह किया कि आप इस पत्रिकाके मुख्य सम्पादक पदको स्वीकार करें। पहले तो मुझे कुछ आश्चर्य सा हुआ और सोचने लगा कि तू सम्पादक पदके योग्य है भी या नहीं। यदि तुझे योग्य समझा भी जा रहा है तो क्या तेरे पास समय भी है? पाकिस्तानसे निर्वासित होनेके पश्चात् चाहे एक घण्टा भी अवकाश नहीं मिला, पर वेदभाष्य-अन्वेषण कार्य तथा आर्षपाठविधिका कार्य तो कुछ भी नहीं किया। काशी विद्वन्मण्डलद्वारा संचालित कार्यविशेषमें ही लगा रहा तथा लगा रहता हूँ। यह सब मैंने उक्त पण्डितजीसे कहा। इस पर भी उनका वही आग्रह रहा और वैदिक धर्म के सच्चे सेवक श्री० प्रो० महेश प्रसादजी की अन्तःप्रेरणा थी। तो मैंने अन्तमें यह कहा कि पत्रोंका चलना बहुत कठिन है। कमसे कम दो वर्ष तक यह समझकर कि व्यय ही व्यय होगा आय कुछ न होगी, दूसरे शब्दोंमें दो वर्ष का व्यय घाटेमें डालनेके लिए तय्यार होकर अर्थात् प्रबन्ध करके ही पत्र चलानेका नाम लेना चाहिये। मैं नहीं चाहता था कि [illegible]

निकला कि अच्छ एक वर्ष 'वेदवाणी' चल जावेगी तो हो सकता है। एक वर्ष तक घोर परिश्रमसे 'वेदवाणी' घाटा सहन करके भी चलाई गई। अब उनके कथनको मैं टाल नहीं सका! मुझे कहना पड़ा कि अच्छा मैं यथाशक्ति इसके लिये यत्न करूँगा।

मेरा यह स्वभाव रहा है (चाहे यह बुरा हो वा अच्छा) कि या तो मैं लेखनी उठाता नहीं या उठाता हूँ तो फिर रोकना कठिन हो जाता है। भाषणमें कभी मनुष्य न्यूनाधिक भी कह जाता है तो उससे कोई हानि नहीं होती जितनी लेखमें कुछ न्यूनाधिक लिखनेसे होती है। यह बहुत ही उत्तरदायित्वका काम है, समय ही बतायेगा कि मैं इसे कहां तक पूरा कर पाता हूँ। यह भी मैं ने अनुभव किया कि प्रायः आर्य पत्रोंके सभी सम्पादक कृपा कर मुझे सामान्य वा विशेषांकोंके लिये लेख लिखनेके लिये पत्र पर पत्र लिखनेका कष्ट करते रहते हैं। यह ठीक है कि मैं प्रायः नहीं लिख पाता। जब लिखता हूँ तो प्रायः छापते ही नहीं। संस्कारविधि के सम्बन्धमें मैंने एक लेख अत्यन्त परिश्रमसे १५ दिनका समय लगाकर लिखा, पर जब पत्रों में भेजा तो किसीने नहीं छापा। कोई रुष्ट न हो जावे,यह भी एक बड़ा प्रश्न उनके सामने रहता है। तब से मैंने यह निश्चय कर लिया लेख तभी भेजना, जब वह पत्र उसके लिये पात्र हो, अत्यन्त आग्रह करे।

लिखनेके लिये मेरे मनमें इतना कुछ है कि मैं

के द्वारा सम्भव है मैं कुछ विचार, जिन्हें आर्य जनता के लिये परमावश्यक समझताहूँ, पहुँचा सकूँ।

मैं यथाशक्ति यत्न करूँगा कि इस पत्रकी विचार धारा उत्कृष्ट-प्राचीन आर्ष भावनाओंके अनुरूप, वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द प्रदर्शित सिद्धान्तोंके अनुकूल हो, जो बहुत कुछ हमारे माननीय लेखक महोदयों पर निर्भर है। आगे भविष्य का ज्ञाता परमेश्वर है।

आर्य-जनता, संस्कृत-प्रेमी, प्राचीन सस्कृति-सभ्यता और साहित्यमें निष्ठा रखने वाले प्रत्येक भाई और बहिन इस पत्रको हर प्रकारसे पूर्ण सहयोग दें।

वैदिक धर्मका सेवक—
ब्रह्मदत्त जिज्ञासु
स्थायी पता—पो० अजमतगढ़ पैलेस—बनारस
वर्तमान पता—रामलाल कपूर ट्रस्ट सोसाइटी
गुरु बाजार, अमृतसर

उपयोगी पुस्तकें

नवीन और मौलिक पुस्तकें पढ़िये

वैद्यकौस्तुभ

भिषक्चूडामणि कविवर श्री मेवाराममिश्र प्रणीत

वैद्यकशास्त्रका लगभग ३०० वर्षोंसे अधिक प्राचीन यह अपूर्व ग्रन्थ प्रथमवार प्रकाशित हुआ है। वैद्य-जीवन की कविता इसके सामने कुछ भी नहीं। साथ ही सब रोगोंका निदान और चिकित्सा, रसादि का मारणादि और रसचिकित्साका विस्तृत वर्णन है। पुस्तक १६ सर्गों में है। इसको पढ़कर काव्यके आनन्दके साथ साथ वैद्यकशास्त्र के अनुभूत योगोंसे लाभ उठाइए। वैद्यक के साथ साथ अपूर्व विचित्र शब्दालंकारादिका भी इसमें समावेश है। प्रत्येक वैद्य, वैद्यकके छात्र और साहित्यरसिक विद्वानों को यह [illegible] अवश्य ही उपादेय है। मूल्य ४॥)

उवटाचार्य कृत भाष्य के सहित शौनकाचार्य कृत।

ऋग्वेद-प्रातिशाख्य

प्रकाशित हो गया।

वैदिक साहित्य में रुचि रखनेवाले विद्वानों को यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि उक्त ग्रन्थ-रत्न सभाष्य प्रकाशित हो गया। इसका संपादन वैदिक विषयके प्रसिद्ध विद्वान् डा० मङ्गलदेव शास्त्री, एम० ए०, डी० फिल० (ऑक्सफोर्ड) ने, ८, १० वर्षों के अत्यन्त परिश्रम से, इँग्लैण्ड, जर्मनी, पैरिस, मद्रास, पूना, बनारस आदि के प्राचीन-ग्रन्थों के पुस्तकालयों की अनेकानेक प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के आधार पर, विवेचनात्मक दृष्टिसे किया है। इसी कारण से इसकी प्रशंसा अनेक देशी विदेशी विद्वानों ने मुक्तकंठ से की है। इस प्राचीन ग्रन्थरत्न का ऐसा शुद्ध संपादन अभी तक कहीं नहीं हुआ था।

मूल्य ६॥)

संस्कृत-निबन्ध-रचना का एकमात्र अपूर्व ग्रन्थ।

प्रबन्ध-प्रकाश

परिष्कृत तथा परिवर्धित अष्टम संस्करण

ग्रन्थकर्ता डा० श्री मङ्गलदेवशास्त्री, एम० ए०, डी० फिल० भूतपूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, बनारस।

पुस्तक की विशेषतायें:—

१. पुस्तक के प्रारम्भमें सरल संस्कृतभाषा में प्रबन्ध-रचना-सम्बन्धी नियमों आदि का विस्पष्ट वर्णन है।

२. उद्योग, भवितव्यता, धैर्य, धर्म, परोपकार, सत्सङ्ग, सन्मित्र, पुरुषार्थ-चतुष्टय, स्थिरनिश्चयता, व्रत-पालन उदरदरी, दलदरविन्द, वाराणसी-वैभव आदि अनेक विषयों पर प्राचीन तथा नवीन सुप्रसिद्ध लेखकों के संस्कृत निबन्ध दिये गये हैं। इनके पढ़ लेने से निबन्ध-रचना की शैली से परिचय होने के साथ संस्कृतभाषा में लेख लिखने में भी अत्यधिक सहायता मिलेगी।

३. पुस्तकके अन्त में पाँच प्रकरणों में गद्य-पद्य मय लौकिक तथा वैदिक संस्कृतके सुभाषित तथा लोकन्याय दिये हैं। ये निबन्ध-रचना के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

४. संस्कृत निबन्ध-रचनाके साथ साथ संस्कृत-सामान्य व्युत्पत्ति तथा अनुवादके लिए भी पुस्तक अतीव उपयोगी है।

मूल्य केवल—डेढ़ रुपया।

पुस्तकों के मिलने का पता—
आदर्श साहित्यमन्डल, १२ जङ्गमबाड़ी, बनारस।

दूसरे वर्ष का विशेषांक

❋ सामवेद अंक ❋

वेद प्रेमियों को यह जानकर हर्ष होगा कि वेदवाणीके दूसरे वर्ष का विशेषांक 'सामवेद अंक' के रूप में बड़ी सुन्दरतासे प्रकाशित किया जावेगा। इसमें सामवेद और उसका उपासना कांड-परक भक्तिरससे पूर्ण हिन्दी अनुवाद स्पष्ट तथा शुद्ध अक्षरों में वेदप्रेमी जनता के लिए समर्पित किया जावेगा। केवल 'सामवेद अंक' का ही मूल्य ४) होगा। ४॥) वार्षिक मूल्य देकर ग्राहक बनने वालों के लिए वर्ष भर तक वेदवाणी के अतिरिक्त यह विशेषांक बिना मूल्य मिलेगा। यह विशेषांक परिमित संख्या में छप रहा है। ४) में अर्थ सहित सामवेद कहीं से प्राप्त नहीं हो सकता। साधारण तथा निर्धन जनता तक कम मूल्य में वेद पहुँचाना ही हमारा लक्ष्य है।

पहलेसे ग्राहक बन जाने वाले व्यक्तियोंको ही 'सामवेद अंक' दिया जावेगा। अतः ग्राहक बननेमें शीघ्रता करें।

सामवेद समालोचनाअंक

यह निश्चय किया गया है कि सामवेद अङ्कके निकलनेसे पहले ही पाठकों को सामवेदका समालोचनात्मक की परिचय करानेके लिये भूमिकाके रूप में 'सामवेद समालोचना अङ्क' प्रकाशित किया जाय। इसमें निम्नलिखित विषयों पर लेख रहेंगे। विद्वानों से प्रार्थना है कि वे कृपया अधोलिखित विषयों में से अपने अभीष्ट किसी एक विषय पर संक्षिप्त मौलिक अन्वेषणपूर्ण लेख भेजकर कृतार्थ करें।

१–सामवेदके ऋषि, २–सामवेदके देवता, ३–सामवेदके छन्द, ४–सामवेदके स्वर, ५–सामवेद का गान, ६– ,, की शाखायें, ७– ,, भाष्य, अनुवाद, ८– ,, याज्ञिककर्मकण्ड ९– ,, में इतिहास १०– ,, और गीता, ११– ,, व विवाह संस्कार १२ ,, मंत्र सख्या विभाग, १३ ,, में पुनरुक्ति, १४ ,, के ब्राह्मण, १५ ,, की उपनिषदें, १६ ,, के श्रौत गृह्यसूत्र, १७ ,, प्रातिशाख्य, १८ ,, प्रक्षेप, १९ ,, की अनुक्रमणियाँ ०,, में विज्ञान, १ ,, अलङ्कार, २२ ,, का उपवेद (गान्धर्ववेद) २३ ,, पर कार्य करने वाले विदेशी विद्वान, इत्यादि

निवेदक—सम्पादक वेदवाणी, काशी।

आवश्यक निवेदन

अपने ग्राहकों से—

वेदवाणी के स्वाध्यायशील तथा उदार ग्राहकों को, जिन्होंने इसे अपनाकर वेद प्रचार के महान् उद्देश्य की पूर्ति में हाथ बटाया है, उनके लिये धन्यवाद दिया जाता है, और साथ ही उनसे नम्र निवेदन है कि जिस प्रकार उन्होंने इस पवित्र कार्य की गंभीरता और उपयोगिता को परख कर अब तक सहयोग प्रदान किया है वैसे ही वे आगामी वर्ष में भी स्वयं ग्राहक बने रहकर ४॥) रु० वार्षिक मूल्य शीघ्र भेजने की कृपा करें, तथा अपने इष्ट मित्रों और अन्य सज्जनों को भी शीघ्र ग्राहक बनाकर वेद प्रचार के इस पुण्य कार्य में सहयोग करें। वार्षिक मूल्य न प्राप्त होने पर अगला अंक वी०पी० से भेजा जावेगा। कृपया उसे स्वीकार करें।

नये ग्राहक बननें वालोंसे—

कुछ महानुभावों तथा सस्थाओं को वेदवाणी समय समय पर नमूने के लिये भेजी गई है इस सेवासे पूर्ण लाभ उठाकर इसकी उपयोगिताको समझते हुए वे स्वयं ग्राहक बनकर अन्योंको भी ग्राहक बनायेंगे।

जो सज्जन ग्राहक न बनना चाहें और वी०पी० न लेना चाहें वे वैसी सूचना अवश्य तथा शीघ्र दें।

व्यवस्थापक—वेदवाणी, आदर्श साहित्य मण्डल, जंगमवाड़ी, बनारस।

मुद्रक तथा प्रकाशक—पं० भगवद्दरण आर्येय, आदर्श साहित्य मण्डल के लिये श्री कृष्ण प्रेस बनारस में छपा।

ॐ वर्ष २ अंक ३

वेदवाणी

भारतीय संस्कृति तथा स्वतन्त्रताके रक्षक, उपप्रधान मन्त्री, वज्रपुरुष,

श्री सरदार बल्लभभाई पटेल

ने, जिनका ७५ वाँ शुभ जन्मदिन समस्त भारतमें इसी ३१ अक्टूबरको मनाया गया, इस वर्षके ऋषि निर्माणोत्सव में निम्न संदेश जनता के लिए दिया—

सन्देश

'हिन्दुत्व जब एक नाजुक समय से गुज़र रहा था, तब महर्षि ने ही उसमें नया जीवन फूंककर उसे अन्ध कूपमें गिरने से बचाया। भारत को आज उन के जैसे साहसी, चरित्रवान् और निष्ठावान् सुधारकों की आवश्यकता है। इस स्मरणीय दिवस पर आर्य-समाजों से मेरी यही अपील है कि जो कार्य स्वामी दयानन्द ने अपने हाथ में लिया और उसके लिए उन्होंने अपने जीवन की बलि देदी, उसके पूरा करनेमें वे निःस्वार्थ और सच्ची सेवाका व्रत लें'।

प्रधान सम्पादक—श्री० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

सम्पादक—प्रो० महेश प्रसाद

स० सम्पादक—श्री क० च० 'राकेश'

मार्गशीर्ष २००६, नवम्बर १९४९
दयानन्दाब्द १२५
वेद व सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०५०

व्यवस्थापक—श्री आनन्दस्वरूप बी० ए०
वेदवाणी कार्यालय, आदर्श साहित्य मण्डल,
३५।१२ जंगमबाड़ी, बनारस

वार्षिक मूल्य—भारतमें ४॥)
विदेश में १० शिलिंग ६)
एक प्रति ६ आने

विषय-सूची

वेदवाणी के नियम

१-पत्र प्रतिमास प्रथम तिथि को प्रकाशित हुआ करता है।

२-वार्षिक मूल्य ४॥) हैं जो मनीआर्डर द्वारा अग्रिम भेजना चाहिये।

३-लेख सम्पादक, वेदवाणी के नामसे आने चाहिए। लेख सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा मौलिक हों। उनको प्रकाशित करना, न करना तथा संशोधित करना सम्पादक के अधीन है। अस्वीकृत लेख पोस्टेज प्राप्त होने पर लौटाये जा सकते हैं। लेखोंमें प्रदर्शित विचारोंके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं।

४-वार्षिक मूल्य, विज्ञापन-सम्बन्धी धन तथा पत्र व्यवस्थापक वेदवाणी, आदर्श-साहित्य-मण्डल, १२ जंगमबाड़ी, बनारस के नाम भेजना चाहिए।

ॐ

वेदवाणी

सं श्रुतेन गमेमहि, मा श्रुतेन विराधिषि ।

हम सदा वेदवाणी से संयुक्त रहें, उससे कभी विमुख न हों

वर्ष २] काशी—मार्गशीर्ष सं० २००६ वि०, नवम्बर १९४९ ई० [अंक ३

प्रभो ! बल दो मुझे !

ऋषिः—विश्वमनाः वैयश्वः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—विराट् उष्णिक् । स्वरः—ऋषभः ।

ओ३म् न ह्यंग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।
राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥

ऋग्वेद ८. २४. १२

(अंग) हे प्रिय ! (नृतः) हे नचानेवाले ! (राधसे त्वत् अन्यं न हि विन्दामि) साधना-सिद्धि के लिये तुम से अन्य किसी को नहीं पाता हूँ । (गिर्वणः) हे वाणी से अच्छी प्रकार भक्ति करने योग्य प्रभो (राये द्युम्नाय शवसे च) धन, तेज और बल के लिये भी अन्य किसी को नहीं पाता ।

छोड़ नट नागर तुम्हें जाऊ कहाँ ?
तुम सा वर-दाता भला पाऊँ कहाँ ?
गा रहीं सब वाणियाँ तुम को यहाँ,
भेंट मैं अन्यत्र पहुँचाऊँ कहाँ ?
पूर्ण हो सब कामना, फल दो मुझे ।
कीर्ति दो, धन दो, प्रभो बल दो मुझे ॥

—श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार

विश्व-कल्याण का श्रेष्ठ उपाय

[श्री विद्यानन्द संन्यासी दयानन्द भिक्षु)

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्या सीद भासाऽन्तरिक्षमापृण ।

यजु० १७ । ७२

हे जीव तू अपने को नहीं जानता, तू तो सुपर्ण, गरुत्मान् और सब शुभ-लक्षण-युक्त है । तू एक जाति या देश का नहीं, किन्तु सम्पूर्ण जगत्का पुरुष है । पृथ्वीकी पीठपर स्थित होकर चमक, और अपनी दीप्तिसे जगत्को चमका दे । तेरे संकल्प वज्रको इस संसारमें कोई नहीं रोक सकता। तेरी शक्तिकी गति अप्रतिहत है । क्या तू कहता है 'राग द्वेष दुर्जेय व संस्कार प्रबल होते हैं' ? नहीं, तू अपने बल को नहीं समझता । तेरा बल तो निःसन्देह सबको नमा देने वाला है । तू उठ, इस सृष्टिमें मुरझाया हुआ, गिरी हुई तबियत क्यों रहता है ? तुझे तो दिनों दिन उन्नत होना चाहिए । तू अपने आपको विकसित करनेके लिए ही आया है । तुझे जीवन द्वारा आत्मा की शक्तियोंका प्रकाश करना है, तेरे प्राणमें महाबल भरा हुआ है । इस बल को पाकर लगातार तेरी उन्नति होती जाय । अपने आप को पतित, कमज़ोर समझना या हिम्मत हारनेका क्या काम है ? अतः इस 'दक्ष' से मुक्त होकर इस शरीररुपी रथ पर सवार हो जा । अभी तक तू इसपर सवार नहीं था, किन्तु शायद यह शरीर तुझपर सवार हो रहा था। उठ, इस शरीरका तू अधिष्ठाता है, यह रथ तेरा है। इसे आधीन करके चला तो पता लगेगा कि यह रथ कितना सुखसे चलने वाला है और तेरा जीवन उत्तरोत्तर आनन्ददायक यात्रा बन जायगा । रोग क्लेशादि का प्रभाव तुझ पर न हो सकेगा । बल्कि तेरे प्रभाव से यह शरीर रागादि से भी रहित स्वस्थ हो जायगा ।

हम तो अपने आप को भूल गये कि हम स्वयं आत्मारूप हैं इसलिये इस संसार की परम तुच्छ, धन, दौलत, माल, जगह, स्त्री, पुत्र, नाम, शरीर, आराम, सुख, सौन्दर्य आदि विनश्वर बस्तुओं में इतना प्रेम करने लग गये, इनमें इतना आसक्त लिप्त हो गये कि हमें इस गंदी दलदल से ऊपर उठना असम्भव सा हो गया है । पर जो हमारा असली स्वामी और सखा है और सब कुछ है, परम पवित्र प्रभु है उसे हम दिन रात के चौबीसों घण्टों में कुछ क्षणों के लिये भी स्मरण नहीं करते । अब तो हम होश संभालें, जागें और अपने परम प्यारे अग्नि प्रभु को अपनालें । वही हम सब प्रजाओं का एकमात्र पति हैं, वही सब सुखों और सब अभीष्टों को पूरा करने वाला है । वही एकमात्र है जो कि हम सब को अपने परम यज्ञ द्वारा सब कुछ जल वायु प्रकाशादि अमूल्य वस्तुयें दे रहा हैं । अरे प्यारो, हम उसे छोड़ कहां प्रेम करने लगे ? सचमुच हमने अपनी प्रेम शक्ति का अभी तक घोर दुरुपयोग किया है । क्या प्रेम ऐसी वस्तु हमें इन अशुचि, तुच्छ, अनित्य वस्तुओं में रखने के लिये ही दी गई थी ? आओ, अब तो हम अपने प्रेम के लक्ष्य को पा लेवें, और उस विश्वपति को अपना प्यारा बना लेवें । किन्तु इस तरह प्रेम पथपर चल देने पर, भाइयो, हमें उसे रिझाना होगा, अपने प्रति आकर्षित करना होगा, अर्थात् हमें भी उसका प्यारा बनना होगा । और उसके प्यारे तो हम तभी बन सकते हैं, जब कि हम "स्वग्नि" बन जायें, उत्तम प्रकार की आत्मायें बन जायें । अतः आओ हम सब मनुष्य अपने उस परम प्यारे के लिये अपनी आत्माओं को शुद्ध करें । अब हमारी आत्माग्नि से विश्व प्रेम की सुन्दर किरणें ही प्रसारित होवें । हमारी बुद्धिकी अग्निसे सत्यकी ज्योति ही निकले, हमारी मानसिक अग्नि सर्व कल्याण के उत्तम बिचारों में प्रकाशित हुआ करे और हमारी चिन्ताग्नि से पवित्र इच्छायें वा भावनायें उठें । इस प्रकार हम उत्तम अग्नि वाले हो जायें, क्यों कि इसी प्रकार वह हमारा प्यारा हमसे प्रसन्न होगा । इसी प्रकार हमें अपने प्यारे को रिझाना है ।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

ऋ० १० । १९१ । २ ।

शब्दार्थ—हे मनुष्यो (संगच्छध्वं) सदा मिलकर चलो, आचरण करो (संवदध्वं) मिलकर बोलो और (वः)

तुम्हारे (मनांसि) मन (संजानताम्) मिल करके ज्ञान प्राप्त करें, समान ज्ञान वाले होवें (यथा) जैसे कि (पूर्वे देवाः) पहले से देवलोग (संजानाना) मिलकर जानते हुये एक ज्ञान होते हुये (भागं) भजनीय वस्तु की, अपने भागकी (उपासते) उपासना करते उपलब्धि करते रहे हैं।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सदा मिलकर चलो, आचरण कर, बोलो, तुम्हारे मन सदा मिलकर एक निश्चय किया करें। यह दैवी नियम है। देव लोग सदा "संजानाना" होकर, समान मन और ज्ञान वाले होकर ही अपने कार्य भाग को निवाहते आये हैं। असल में मनों द्वारा ज्ञान की एकता ही वास्तविक एकता है। मनकी एकता होने पर वचन, और कर्म (आचरण) की एकता होनेमें देर नहीं लगती। सब ज्ञानी देव पुरुष पुराने काल से लेकर आज तक संगठित होकर बड़ी से बड़ी सफलतायें प्राप्त करते रहे हैं। मिलना दैवी प्रवृत्ति है। क्षुद्र स्वार्थों को छोड़ सकना और न मिलना आसुरी है। अतः हे मनुष्यों, तुम मिलो, अपने सैकड़ों क्षुद स्वार्थों को छोड़ कर एक बड़े समष्टि सुख के लिए सदा मिलो। लाखों करोड़ों को मिल कर काम करने से जो तुम्हें बड़ी भारी सामूहिक सिद्धि मिलेगी उससे लाखों करोड़ों में से प्रत्येक व्यक्ति के सच्चे स्वार्थ अवश्य सिद्ध होवेंगे। मिलने में बड़ी भारी शक्ति है। तुम मिलकर के चलो, मिलकर के करो, तो कौनसा कार्य असाध्य है ? मिलकर के ध्यान प्रार्थना करने में तो अपार शक्ति है।

"मैं तर्क करके किसी का अपमान करना नहीं चाहता न मैं यह चाहूँगा कि ईश्वर के विषय में कोई तर्क न करे और भाले भाले बालक की तरह ईश्वर में विश्वास करलें। यदि मेरा अस्तित्व है तो ईश्वर का भी अस्तित्व है। प्रार्थना में एक हो जाना ही असली उपासना है"।

(म० गांधी जी)

यदि मेरे जीवन में ईश्वर प्रार्थना ने स्फूर्ति प्रवाहित न की होती तो मैं कभी का पागल होगया होता। मेरे जीवन में बहुत सी कठिनाइयां आई हैं। कठिनाइयां सार्वजनिक भी थीं और खानगी भी। यदि उनकी निराशा तथा भीत को मैं किसी तरह दूर कर सका तो ईश्वर प्रार्थना से मेरी आत्मा को शक्ति देने वाला संसार में ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा उपकरण नहीं है। मुझे जो कुछ भी शान्ति सफलता प्राप्त हुई ईश्वर प्रार्थना के कारण ही हुई।

(म० गांधी)

अचल श्रद्धा और उच्च अभिलाषा तथा दृढ़ निश्चय से सब कुछ हो सकता है। प्रभात तथा सायंकाल के समय एक घण्टे के लिये शरीर को निश्चेष्ट मन को निष्क्रिय करके एकान्त में अकेले अथवा सब कुटुम्बियों पड़ोसियों के सहित सच्चिदानन्द भगवान् के ध्यान में ओ३म् नाम का मानसिक उच्चारण करते हुये मन और हृदयको परमात्मा में लीन कर दो। मन पर जोर मत दो, धीरे धीरे मन उस अवस्था में संलग्न हो जायगा। अन्त में ॐ शान्तिः शान्तिःशान्तिः कहके समग्र विश्व में शान्ति और विश्व कल्याण की लहरें प्रेरित करो।

वैयक्तिक प्रार्थना के साथ सामुदायिक प्रार्थना करनी भी अधिक प्रभावशाली फलदायक होती है। अतः भेदभाव छोड़कर सामुदायिक प्रार्थना करना भी विशेष लाभजनक होगा। ऐसे संकट के समय बस इसी एक मात्र उपाय से भगवान संसार की विपत्ति स्वार्थीपन को दूर कर सकते हैं। प्राचीनकाल में जब जब जगत् पर ऐसी विपत्ति या संकट आया है तब ही तब अपना तथा जगत् का कल्याण चाहने वाले देवगण तथा ऋषि मुनियों ने जगत् पालक अनन्त शक्तिमान्, दयासागर परमात्मा की शरण ली थी और उसीकी प्रार्थना से सब का कल्याण हुआ। यही विश्व कल्याण एवं विश्व शान्ति का एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उपाय है। नित्य सब नरनारी, बाल, वृद्ध, युवा, शुद्ध भाव से एकान्त में बैठकर अपने हृदय को टटोलो और अपनी आत्मा का निरीक्षण करो, घृणा, राग, द्वेष क्रोध और ईर्ष्या आदि के भाव हृदय से खरोंच कर फेंक दो, अधम विकारों दुष्ट और अधम विचारों से युद्ध करो। दृढ़ संकल्प बल से गर्जन करके कहदो कि हमारे पवित्र अन्तःकरण में त्रिकाल में ही अधम विकारों और विचारों के लिये स्थान नहीं है। निर्भयता के वातावरण में यह विचार पुष्ट नहीं हो सकते। शुद्ध और पवित्र विचारों को हृदय में आरूढ़ रखने का और अखण्ड जाग्रत रखने का प्रयत्न करो। समग्र विघ्न समस्त कठिनाइयों को कुचलने का तुम्हारी आत्मा में सामर्थ्य है उन्हें कुचल डालो।

जप और प्रार्थना की विधि

(१) ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः कह सिद्धासन या सुख आसन से बैठो।

(२) गहरे स्वास पांच बार लो और छोड़ो, इससे चित्त शान्त होगा।

(३) हृदय स्थान में आत्मस्थ होकर परमात्मतत्त्व का ध्यान करो।

(४) ओ३म् मन्त्र का जप आत्मस्थ हो प्रभु के गुणों का ध्यान करते हुए करो।

(५) सन्ध्या के मन्त्रों का पाठ करते हुए अपने मन में यह भावना करो कि—मैं आरोग्यता, प्रेम, सुख-शान्ति, भ्रातृ-भाव, सदाचार, दया, न्याय, अहिंसा, सत्य, और ज्ञान के विचारों की लहरें सारे विश्व के मनुष्य मात्र के लिए प्राणीमात्र के लिए भेजता हूँ। रोगी लोग निरोगी हों। अशक्त और कमजोर शक्तिशाली और बलवान् हों। निर्धन व दुःखी धनवान् व सुखी हों। निर्दय कृपण दयावान् दातार हों। दुराचारी व अपवित्र सदाचारी व बिज्ञ हों, दुर्जन सज्जन हों, सज्जन और भक्त जनों को शान्ति प्राप्त हो, आत्म-ज्ञानी पुरुष संसार के बन्धन से मुक्त हों और वह जीवन मुक्त होकर दूसरों को मुक्त करें। ज्ञानवान् के ज्ञान का, धनवान् के धन का, शक्तिवान् की शक्ति का और इन्द्रियों का सदुपयोग हो। विश्व के समस्त प्राणी सुखी हों, रोगरहित हों, और उनका कल्याण हो। मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ वह मुझे क्षमा करें। मेरा कोई द्वेषी नहीं है। मैं प्रत्येक जीव में तथा प्रकृति के अणु अणु में परमात्मा का दर्शन करता हूँ। जिस किसी में सौंदर्य का दर्शन है परमात्मा की प्रभा है। समस्त जगत् में सुख-शान्ति, भ्रातृभाव और सदाचार का साम्राज्य स्थापित हो। उस परमात्मा को नमस्कार हो। आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों प्रकार के दुःखों का नाश होकर मुझे तीनों प्रकार की हो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

—०—

चन्द्रमा

(लेखक— श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी)

सूर्य के पश्चात् आकाशीय पिण्डों, समस्त ग्रह उपग्रहों में चन्द्रमा बड़े आकार का हमारे दृष्टिपथ होता है। सूर्य अपने ग्रहण काल को छोड़कर सदा एक आकार का दिखलाई पड़ता है परन्तु "चन्द्रमा जायते पुनः" (यजु० २३। १०, ४६) चन्द्रमा अपने आकार को पुनः पुनः प्राप्त होता है, वह कभी अत्यन्त सूक्ष्म कभी उससे बड़ा और कभी पूर्णरूप में गोलाकार, कभी क्षीण होता हुआ दिखलाई पड़ता है। यह इस प्रकार भिन्न-भिन्न आकारों में परिवर्तित होता हुआ घटता बढ़ता हुआ मास में एक वार पूरा और एक वार विलुप्त हो जाता है इस प्रकार मास का निर्माण करता है। वेद में कहा भी है—

अरुणो मासकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी॥

ऋ० १। १०५। १८

यह मन्त्र चन्द्रमा के सम्बन्ध में है। यहाँ निरुक्त में कहा है कि:—"अरुण आरोचमानो मासकृन्मासानां चार्धमासानां च कर्ता भवति चन्द्रमा वृकः पथा यन्तं ददर्श नक्षत्रगणमभिजिहीते निचाय्य येन येन योक्ष्यमाणो भवति चन्द्रमास्तक्ष्णुवन्निव पृष्ठरोगी" (निरुक्त ५। २१।)

अर्थात् आकाश में सर्वत्र प्रकाशमान चन्द्रमा मासों और अर्धमासों का बनाने वाला अपने कक्षामार्ग से गति करते हुए नक्षत्रगण को देखता और जिस जिस नक्षत्र से युक्त होने वाला होता है उस उस को लक्ष्य कर उदित होता है जैसे झुकी हुई पीठ का बढ़ई काष्ठ को चीरते हुए हो जाता है ऐसे झुकाव करता जाता है।

चन्द्रमा न केवल नक्षत्रगण की गति पर ही आश्रित है किन्तु स्वयं भी अपने कक्षावृत्त में आकाश में गति करता है—

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।

(ऋ० १।१०५।१, यजु० २३।९०, अथर्व १८।४।८९)

अर्थात् चन्द्रमा अन्तरिक्ष में ऐसा दौड़ता है जैसे आकाश में पक्षी। चन्द्रमा अपने कक्षावृत्त का चक्र अत्यन्त शीघ्र लगा लेता है अत एव अन्यत्र चन्द्रमा को 'गोतम' नाम भी अत्यन्त गतिमान् होनेके कारण दिया है,

चन्द्रमा में प्रकाश सूर्य का है—

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व०।

यजु० १८। ४०,

इस मन्त्र निरुक्त में 'गौः' सूर्यरश्मि को कहते हैं जिससे चन्द्रमा प्रकाशित होता है यह प्रमाणित करनेके लिये दिया है "अथाप्येको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते—आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति—सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः······ सोऽपि-गौरुच्यते—अत्राह गोरमन्वत इति तदुपरिष्टाद

"व्याख्यास्यामः" (निरुक्त २।६) एक रश्मि चन्द्रमा के प्रति दीप्त है, सूर्य से चन्द्रमा की दीप्ति होती है ऐसा कहा है।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
इत्था चन्द्रमसो गृहे॥

(ऋ० १।८४।१५)

इस मन्त्र पर निरुक्त में लिखा है 'अत्राह गोः सममंसतादित्यरश्मयः त्वं नामापीच्यमपचितमपगतमपहितमन्तर्हितं वामुत्र चन्द्रमसो गृहे' (निरुक्त ४।२५) निरुक्त के प्रमाणानुसार मन्त्र का अर्थ यह है–

अर्थ–(अत्र चन्द्रमसः गृहे) इस चन्द्रमा के घर में –इस चन्द्रमण्डल में (त्वष्टुः गोः अपीच्यं नाम ह इत्था अमन्वत) सूर्य की एक रश्मि के अन्तर्निहित झुकाव को निश्चय शेष अन्य रश्मियों ने ठीक मान लिया-पुष्टि दी।

चन्द्रमा में क्या है:—

चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित होता है इस में किसी को सन्देह नहीं है परन्तु वह क्या है और उसका प्रकाश हमारे तक प्रतिफलित होकर कैसे पहुँचता है इस में पाश्चात्य (योरोपियन) और भारतीय ज्योतिषियों का मतभेद है। पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि चन्द्रमा में पर्वत हैं ज्वालामुखमण्डल या ज्वालामुख भँवर अधिक हैं जिन में से पत्थर आदि पदार्थ पिघल पिघल कर ज्वालाधाराओंके रूप में निकल रहे हैं परन्तु भारतीय विद्वानों का कथन इसके विपरीत है चन्द्रमामें पर्वत हैं इसमें तो मतभेद नहीं है। 'मन्त्रब्राह्मण' में लिखा है "यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्" (मं० १।५।१३) अर्थात् चन्द्रमामें जो कृष्णभाग है वह पृथिवीका हृदय है। पृथिवी का वक्षःस्थल पर्वतों को माना जाता है अतः चन्द्रमा में पर्वत हैं यह तो अविरुद्ध बात है। परन्तु भारतीय विद्वान् चन्द्रमा में ज्वालामुख मण्डलोंको नहीं मानते हैं 'हिमश्रथ' हिमपिण्ड (बरफीला गोला) मानते हैं। उनका कहना है कि जैसे सूर्य अग्निका पिण्ड, अग्निमय और उष्णरश्मि है एवं उसके विपरीत चन्द्रमा हिम (जल) का पिण्ड, जलमय हिमरश्मि है। इस विषय में प्रमाण—

तमा स्थितिविमर्दार्धं ग्रासार्धं तु यथोदितम्।
प्रमाणं वलनाभीष्ट ग्रासादि हिमरश्मिवत्॥
सूर्यसिद्धान्त। सूर्यग्रहण। १३।

यहां चन्द्रमा को 'हिमरश्मि' कहा है।
चन्द्रो जलमर्कोऽग्निः मृद् भूः। (आर्यभटीय)

इस वचन में चन्द्रमा को जल अर्थात् जलमय कहा है साथ में सूर्य को अग्नि अर्थात् अग्नि पिण्ड और पृथिवी को मृत् अर्थात् मृन्मय कहा है।

सूर्य एवाग्नेयः। चन्द्रमाः सौम्यो०॥
(श० ६।३।२४)

अर्थात् सूर्य अग्नि धर्म वाला है और चन्द्रमा उसके विपरीत सौम्य धर्मवाला–जलधर्मवाला है।

सायणाचार्य ने भी पूर्वोक्त 'अत्राह गोरमन्वत०' मन्त्र के भाष्य में कहा है—

उदकमये स्वच्छे चन्द्रबिम्बे सूर्यकिरणाः प्रतिफलन्ति।
(ऋ० १।८५।१५ सायणः)

अर्थात् जलमय स्वच्छ चन्द्रबिम्ब में सूर्य किरणें प्रतिफलित होती हैं।

चन्द्रमा में ज्वालामुख हैं या हिमसंहति और जलस्रोतोमण्डल यह तो न किसी ने देखा और न देख ही सकता है केवल अनुमान ही लगाया जाता है। हाँ, यह तो अवश्य देखने में आता है कि सूर्य आँखों में खटकता है चन्द्रमा आँखों को प्रिय लगता है, सूर्य गरमी बरसाता है, चन्द्रमा ठण्डक पहुंचाता है ओस बरसाता है। सूर्य की ओर पृथिवी की अग्निलपटें दीपशिखा आदि ज्वालाओं की प्रवृत्ति होती है चन्द्रमा की ओर जलराशि समुद्रका स्तर उठजाता है, जैसे जैसे चन्द्रमा बढ़ता है तैसे तैसे समुद्रजल में ज्वार भाटा और ऊपर उछाल बढ़जाता है।

चन्द्रमा में पृथिवी का पर्वतरूप हृदय रखा है यह कहा गया है। पृथिवीस्थ समुद्रजल और चन्द्रमा का आकर्षण होता है, इन बातों से चन्द्रमा का पृथिवी से सम्बन्ध अवश्य प्रतीत होता है। यदि इससे चन्द्रमा को पृथिवी से अलग हुआ माना जावे† तो चन्द्रमा को पृथिवी के चारों ओर घूमना ही चाहिये।

चन्द्रमा पृथिवी के चारों ओर घूमता है इस बात का संकेत—

शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्

(ऋ० ९।१०२।१। साम० पू० ६।२।८।५)

इस मन्त्र में सोम अर्थात् चन्द्रमा को पृथिवी का शिशु कहा है और उससे 'ऋतस्य दीधितिम्=जलकी किरण प्रेरित होना' दर्शाया है।

† 'सूर्य के आकर्षण से उठे ज्वार भाटाके कारण पृथिवी का एक भाग निकल पड़ा होगा और वही चन्द्रमा हो गया होगा'। (सौर परिवार, पृष्ठ ५५६)

चन्द्रग्रहण

सूर्यग्रहण की भांति चन्द्रग्रहण का होना वेदमें दर्शाया है।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
(अथर्व० १९। ९। १०)

अर्थ—(चान्द्रमसाः ग्रहाः नः शम् राहुणा आदित्यः च शम्) हमारे लिये चन्द्रमा के ग्रहण सुखदायक हों तथा राहु अर्थात् सूर्यग्रहण के साथ सूर्य भी सुखदायक हो।

चन्द्रमा और सूर्य के बीच में समरेखा पर पृथिवी के आजाने से सूर्य के प्रकाश को पृथिवी चन्द्रमा पर पहुँचने से रोकती है तब पृथिवी की छाया—भूच्छाया चन्द्रमापर पड़ने से चन्द्रग्रहण होता है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को होता है। सूर्य पृथिवी चन्द्रमा तीनों समान सूत्र में हों तथा पृथिवी मध्य में हो तब वह स्थिति पूर्णिमा को ही हो सकती है, पूर्णिमा वाले दिन सूर्य और चन्द्रमा की दशा विरुद्ध तथा रशिचक्र में परस्पर छः राशि के अन्तरिर होते हैं। अस्तु।

—०—

जगत् जाग !

(श्री योगेन्द्र सेन "योगेश")

जाग रे ! जाग, जगत् जाग,
सुन पुरातन देववाणी !
सूर्य सी पुण्य पुनीत शुचि,
विश्वकी दिव्य वेदवाणी ॥

आर्य-संस्कृति का जन्मस्थान,
जो सतत जाज्वल्यमान।
यही भारतभूमि आर्य-भूमि,
गंगे-यमुने बनी प्रमान ॥

आर्य-भूमि में सदियों से,
नित नूतन गंगा बहती।
लोल लोल चँचल अस्फुट,
तरल-तरंगों से मिल कहती ॥

इसी भूमि पर विश्व के।
देवों ऋषियोंने जन्म लिया।
'वेदवाणी' का जगत को,
निज शुभ सन्देश दिया ॥

वेद सत् ! शेष असत् जानो,
अपने ज्ञान-चक्षु खोलो।
मानो वही जो सत्य हो,
अनृत से ध्यान पृथक् कर लो ॥

पुनः वेदवाणी सन्देश
पूर्णतया हो भवमध्य प्रसृत,
करने को चले प्रणव
सुषुप्त सुप्त जगत जाग्रत ॥

अनुरोध

(रचयिता—रामस्वरूप शास्त्री, 'अमर' तालबेहट)

वे—द-वाणी-पीयूष न त्यागो।
द—याळु की नित करुणा माँगो ॥
वा—क्य सुधारस जगन्नियन्ता का पी जीवन पालो।
नी—ति न्यायपर चलो, मानसिक-अनय कुरीति निकालो।
यु—द्ध असुरी तज कर जागो ॥
ग—वोंन्नत हो करो न हिंसा, मानो वेद-प्रणाली,
यु—द्ध करो उस असुर संघसे जिसने अघ वृत्ति पाली।
ग—रिमा प्राप्त करो, मत भागो ॥
त—ब तक है अवनति भारत की, जब तक वेद न मानें
क—लिमल हरिणी प्रभु-वाणीको, आर्य न क्यों पहिचानें
च—ञ्चलता कौटिल्य विसारो।
ले—किन अमर-सत्य-पथ धारो ॥

वेद और आर्य-समाज

(लेखक—रामवृक्षसिंह 'सरोजेश')

आर्य-समाज की स्थापना सन् १८७५ ई० में हुई। आर्य-समाज और वेदों का तादात्म्य सा है, क्योंकि स्वामी दयानन्दके कथनानुसार आर्य-समाज का प्रधान कार्य वेदों का प्रचार है। इस प्रकार आर्य-समाज के तृतीय नियम के अनुसार आर्यों का प्रधान धर्म (कर्त्तव्य) वेदों का पढ़ना पढ़ाना है। वेदों के विषय में कट्टर सनातनधर्मी जो भाव रखते हैं प्रायः वे ही भाव आर्य-समाजियों के हैं। मन्वादि ऋषियों के शब्दों में वेद ऋषियों द्वारा प्राप्त ईश्वरीय ज्ञान है। इस प्रकार निम्नांकित बातें स्पष्ट हो गईं—

१. वेद प्रभु के ज्ञान हैं। प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में प्रभु अपनी शक्ति से चार सर्वोत्तम ऋषियों द्वारा उनका प्रकाश करता है।

२. आर्य-समाज ४ वेदों की संहिताओं को स्वतः प्रमाण मानता है।

३. वेदों में अनित्य व्यक्तियों का वर्णन नहीं पाया जाता।

४. वेद सब सत्य विद्याओं के मूल हैं और उनमें ऐसी कोई भी बात नहीं है जो मिथ्या हो या वैज्ञानिक कसौटी पर कसी न जा सके। उनमें प्रतिपादित विषयों को केवल कर्मकाण्ड तक संकुचित देखना भूल है।

५. वेद मनुष्यमात्र के लिये है। स्त्री या शूद्र को प्रभु की वाणी से बलात् वंचित रखना अन्याय और पाप है।

६. ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चारों वेद आपस में स्वतन्त्र हैं, अन्योन्याश्रित नहीं।

स्वामी जी महाराज ने केवल वाणी द्वारा ही वेदों की कीर्ति को नहीं गाया, वरन अनेक ग्रन्थों द्वारा भी अपने वैदिक मन्तव्यों को प्रकाशित किया है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में वेद विषयक यथेष्ट सामग्री है। वह तो एक प्रकार से प्राचीन सभ्यता तथा धार्मिक विचारों का विश्वकोष है। उक्त सद्ग्रन्थ में वेद विरोधियों की शंकाओं का परिहार भी किया गया है।

स्वामी जी एवं आर्य समाज ने वेदोंके विषय में लोगों का दृष्टि-कोण कई अंशोंमें बदल दिया है। उन्होंने स्पष्ट बताया है कि वेदों के पुस्तक हाथ जोड़ने और धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाने के लिये नहीं किन्तु पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनानेके लिए हैं। सूर्य का प्रकाश अपवित्र वस्तुओं पर पड़ कर उन्हें पवित्र ही कर देता है, स्वयं अपवित्र नहीं होता वेद-मन्त्रों का भी यही हाल है। उनका यह भी कथन था कि यदि वेदों का प्रचार न किया गया तो विश्व उसी प्रकार अशुद्ध रहेगा जैसे सूर्य के प्रकाश की अविद्यमानता में गन्दगी बढ़जाती है।

वेदों के विषय में साधारण लोगों की धारणा है कि वेद हैं तो अच्छी चीज, परन्तु वह सतयुग के लिये हैं, कलियुग के लिये नहीं। स्वामी दयानन्द इसबात का भी विरोध करते हैं। वह कहते हैं कि जिस प्रकार ईश्वर का एक बार का बनाया हुआ सूर्य सब युगों में चमकता है, उसी प्रकार वेद भी सभी युगों और सभी देशों के लिये एक ही हैं।

इतने अल्पकाल में ही आर्य-समाज ने वेद के प्रचार में जो कार्य किया है, वह वास्तव में—प्रशंसनीय है। आर्य-समाज को केवल स्वामी दयानन्द की असामयिक मृत्यु के कारण ही जो क्षति पहुँची, अभी तक वह पूर्ण नहीं हो पाई है, फिर भी आर्य-लोगों का प्रयत्न पूर्ववत् है।

वैसे तो आये दिन अब कई विचारके लोग उत्पन्न होगये हैं। यह सब केवल तर्क युग का फल है। पर इस तर्क-युग से कोई हानि नहीं होती। कारण कि आर्य-समाज अब स्वाध्यायशील होकर स्व-ग्रन्थ परिशीलन में लग रहा है, घर टटोल रहा है इसका फल भी अच्छा होगा। चाहे जो हो, पर संसार इस बात को मानेगा और सहस्रवार मानेगा कि आर्य समाज के प्रवर्तक ने वेदों को निष्कलंक करके उनको मन्वादि वर्णित उच्चतम पीठ पर लाकर अधिष्ठित करने का पूर्ण प्रयास किया है, और उनके अनुयायी अब कर रहे हैं। स्वामी जी ने अपने वैदिक भाष्यों में पूर्ण प्रयत्न किया है कि वेदों में इतिहास की गन्ध भी न आने पावे। उनके भाष्यों को देख कर स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनको आमरण यही चिन्ता लगी रही कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' यह सिद्ध हो और इसी बात की सिद्धि के लिये उनका परम पुरुषार्थ रहा।

बुरे स्वप्नोंको दूर करनेमें सावधानता

(श्री पं० भगवद्दत्त वेदालङ्कार)

अथर्ववेद का १६ वाँ काण्ड एक प्रकार से अतिसर्जन (छोड़ना) का काण्ड है। यह काण्ड दो अनुवाकों में विभक्त किया गया है। प्रथम अनुवाक में सामान्य दोषों का विसर्जन तथा आत्मिक, मानसिक व शारीरिक शक्तियों को प्रबल बनाने का विधान किया गया है। यदि इन दोषों का परित्याग कर शरीरादि शक्तियों को प्रबल न बनाया गया तो ये दोष मनुष्य में दुष्वप्न्यादि व्याधियों की उत्पत्ति में कारण बन जायेंगे। इस लिए प्रथम अनुवाक में वर्णित दोषों का विसर्जन द्वितीय अनुवाक में वर्णित बुरे स्वप्नादि बीमारियों के लिए प्रतिषेध के समान है। दुष्वप्न्यादि व्याधियां पैदा ही न हों, इसके लिये मनुष्य का सदा प्रतिषेध के रूपमें दोषों का विनाश व शमन करते रहना चाहिए। परन्तु इन दोषों का परित्याग करते हुए भी ये इतने प्रबल होते हैं कि पूर्ण रूप से इनका शमन नहीं होता। और फिर मनुष्यों का स्वभाव भी प्रायः भोग विलास में फंसे रहने का होता है, इस कारण ये दोष सदा बढ़ते ही रहते हैं और दुष्वप्न्यादि व्याधियों से मनुष्य सदा आक्रान्त रहता है। इस लिए द्वितीय अनुवाक में इन दुष्ट स्वप्नों का वर्णन कर इनके विनाश का विधान किया गया है। इस प्रकार प्रथम अनुवाक में बुरे स्वप्नों का प्रतिषेध व रोक है और द्वितीय अनुवाक में बुरे स्वप्नोंका स्वरूप व उनकी चिकित्सा कावर्णन है। इसप्रकार दोनों अनुवाकों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिए प्रथम अनुवाक पर कुछ संक्षिप्त विचार करलेना उचित ही है। अब हम मन्त्रों के आधार पर प्रथम अनुवाक में वर्णित दोषों के शमन व शक्तिप्राप्ति के स्वरूप को दिखाते हैं जिससे दुष्वप्नों के आक्रमण होने से पूर्व ही हम अपने दुर्ग को दृढ़ बना सकें।

मनुष्य की आत्मा मन व शरीरादि को शक्तिशाली बनाने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि मनुष्य में जो दोष पहले से ही विद्यमान हों उनको दूर किया जाये। इसलिए सबसे पहले उनके शमन के लिए प्रथम सूक्त में जल के उपयोग का विधान किया गया है। प्रथम मन्त्र में आता है कि भगवान् ने सब प्राणियों के उपकारके लिए ऊपर से मेघरूप में जल का अतिसर्जन किया है और सूर्यरूपी अग्निपुञ्ज से नीचे की ओर दिव्य अग्नियां प्रवाहित की हैं, जो कि सब प्रकार के दोषों का शमन करके आत्मा व शरीरादि को परिपुष्ट करती रहती हैं। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वे जल व दिव्य अग्नियों के द्वारा दोषों का शमन करते रहें। मन्त्र इस प्रकार है,—

अतिसृष्टो अपां वृषभो ऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः।

(अथर्व १६. १. १,)

जलों को बरसाने वाली, मेघ में विद्यमान अग्नि को छोड़ागया है, और दिव्य अग्नियां छोड़ी गई हैं।

'अपां वृषभः' जल में रहने वाली अग्नि को कहते हैं। मेघ में विद्यमान जलों को यह नीचे लाती है, और जलों द्वारा सब दोषों को शमन करती है। भगवान् ने ये दोनों पदार्थ प्राणियों के उपकार के लिए दिये तो हैं, परन्तु साथ में यह भी कह दिया है कि इन दोनों के दो-दो रूप हैं। एक रूप शिव है और दूसरा घोर है। जो घोर रूप है उसे छोड़ देने के लिए कहा है और जो शिव है उसे ग्रहण करने को कहा है। अब जलों व अग्नियों का जो घोर रूप है, उसे दिखाते हैं। वह इस प्रकर है:—

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन्। २।

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः। ३।

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। ४।

अर्थात् यह घोर अग्नि तोड़ फोड़ देता है, मार देता है, शरीर सम्बन्धी शक्तियों को छीनकर भाग जाने वाला मन का हनन करने वाला, खोद डालने वाला, जलादेने वाला तथा शरीर को दूषित कर देने वाला है। अग्नि व जल के इस घोर रूप का मैं परित्याग करता हूँ, और किसी भी प्रकार से इसका पोषण नहीं करता।

इसीप्रकार अथर्व० १६. १. ७.८, में भी अग्नि आदि के घोर रूप को और भी स्पष्ट किया है। वहां आता है—

योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम्। यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥

जलों में जो अग्नि है, जो कि ऐश्वर्य को छीन कर भाग जाने वाला, खोद डालने वाला, अर्थात् खोखला बना देने वाला तथा शरीर को दूषित कर देने वाला है, उसका मैं परित्याग करता हूँ।

हे जलो ! तुम्हारे में जो अग्नि प्रविष्ट है, उसमें शिव यह है और घोर यह है।

इस प्रकार इन मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि जलों में दो प्रकार की अग्नियां होती हैं, एक शिव रूप और दूसरी घोर रूप। इस लिये इनके घोर रूप को परित्याग करने का विधान किया है। इसी प्रकार दिव्य अग्नि अर्थात् सूर्य के भी दो रूप हो सकते हैं, एक शिव रूप और दूसरा घोर रूप। उदाहरण के रूप में ऋतु-सन्धियों की धूप तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि जो प्राकृतिक प्रकोप हैं वे सब इस सूर्य के कारण हैं। इस सम्बन्ध में हमें एक बात पर और विचार करना चाहिए और वह यह कि ये जल और अग्नि आन्तरिक भी हैं। मनुष्य में विद्यमान रस, रक्त, वीर्यादि भी शरीर व आत्मा को दूषित कर देने वाले हैं। यदि ये आन्तरिक रस आदि जलीय तत्त्व दूषित हो जायें तो उपर्युक्त सब दोष मनुष्य को आ घेरते हैं। इस लिये मन्त्रों में इनके घोर रूप को शमन करने का विधान किया है।

इस दृष्टि से प्रथम सूक्त में इनके दोषों को शमन करने का वर्णन है तो द्वितीय सूक्त में इन रसादियों से परिपुष्ट होने वाली इन्द्रियों को रोग रहित व परिपुष्ट करने का विधान है।

आगे अ० १६।१।१२-१३ मन्त्रों में जल व अग्नि के शिव रूप को भी दिखाया गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोपस्पृशत त्वचं मे ।१२।

शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आधत्त देवीः। १३।

हे जलो ! मुझे तुम कल्याणकारिणी दृष्टि से देखो और अपने कल्याणमय शरीर से मेरी त्वचा का स्पर्श करो।

हम जलों में विद्यमान शिव अग्नियों का आह्वान करते हैं। हे दिव्य जलो ! मुझ में क्षत्र और वर्च धारण करो।

इस प्रकार इन मन्त्रों में जल व अग्नि के शिव रूप को बताया गया है। शिव अग्नि मनुष्य को सब प्रकार से पूर्ण करती है, तो घोर अग्नि मनुष्य का हनन करती है। घोर अग्नि मनुष्य में सांसारिक सुख तथा भोग विलास आदि के लिये भड़क रही होती है।

अगले द्वितीय सूक्त में आंख, कान, वाणी तथा मन आदि इन्द्रियों को श्रेष्ठ बनाने का उपदेश दिया गया है। इन्द्रियां श्रेष्ठ बनें, बलवती बनें, बहिर्मुखी न हो कर अन्तर्मुखी बनें — इत्यादि बातें इन्द्रियों के सम्बन्ध में कही गई हैं। हमारा बाह्य जगत् से सम्बन्ध इन्द्रियों द्वारा ही होता है। यदि ये इन्द्रियां श्रेष्ठ न बनीं तो बुरे बुरे बाह्य-प्रभाव हमारे ऊपर पड़ेंगे जो कि दुष्वप्न्यादि की उत्पत्ति में कारण होंगे। यदि इन्द्रियां श्रेष्ठ हुईं, भद्र ही भद्र हमने देखा, भद्र ही सुना और भद्र ही कहा तो इस प्रकार जब चारों ओर भद्र ही भद्र होगा तो स्वप्न भी हमें श्रेष्ठ आयेंगे।

अब हम मन्त्रों के आधार पर संक्षेप में यह देखते हैं कि इन्द्रियों को किस प्रकार का हमें बनाना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ।१।

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकंश्रूयासम् ।४

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ।५।

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय। ६

वाणी मीठी तथा शक्ति सम्पन्न हो, और दुष्ट बातों में रमने वाली न हो। १।

कान उत्तम श्रवणशक्ति वाले तथा भद्र बातें सुनने वाले हों जिससे कि मैं अपनी भद्र कीर्ति सुनूं। ४।

उत्तम श्रवण शक्ति और निरन्तर ध्यान से सुनने की शक्ति ये दोनों मुझे न छोड़ें। और मेरे चक्षु उत्तम पंखों वाले तथा निरन्तर ज्योति से युक्त रहें। ५।

हे मन ! तू ऋषि रूप इन्द्रियों का प्रस्तर अर्थात् आसन है, तुझ दिव्य आसन के लिये नमस्कार है। ६।

इन मन्त्रों में चक्षु के उत्तम पंख कहने का भाव यह है कि वैदिक सिद्धान्तके आधार पर किसी पदार्थ को देखने की प्रक्रिया यह है कि, दृष्टिशक्ति आंख से निकल वस्तु पर दूर जाकर पड़ा करती है। वह उत्तम पंखों के कारण अच्छी प्रकार उड़ कर और भी दूर दूर तक के पदार्थों पर पड़ेगी। इस से मनुष्य दूर दूर तक के पदार्थों को भी देखने लगता है। आगे ६ ठ मन्त्र में मन को ऋषियों का आसन बताया है। और ये ऋषि इन्द्रियां हैं जो कि इस मन रूपी आसन पर विराजमान हैं। इन्द्रियों को यहां ऋषि इस लिये कहा है कि सब प्रकार के दोषों व व्याधियों का विनाश हो कर ये श्रेष्ठ व सूक्ष्म बातों को जानने वाली बन गई हैं। जब तक मन पर असुर विराजमान होते हैं, तब तक यह मन ऋषियों का आसन नहीं बन सकता। जब असुर इस मन रूपी आसन से हटा दिये जाते हैं, तभी ऋषि इस आसन पर आकर विराजमान होते हैं।

प्रथम सूक्त में जल व अग्नि के घोर रूप तथा इससे उत्पन्न रोगों व दुष्वप्न्य आदि दोषो को शमन व परित्याग करने का वर्णन आता है। जब सब दोष आदि शान्त होगये तब दूसरे सूक्त में एक एक इन्द्रिय को व्यष्टि रूप में निर्देश कर उसके श्रेष्ठ व शक्तिशाली होने का वर्णन आता है। अब ३,४ सूक्तों में मनुष्य को समष्टि रूप से लेकर अन्य जो ऐश्वर्य हो सकते हैं, उन सब का शिरोमणि आश्रय स्थान होनेका विधान किया है। वह इस प्रकार है—

शिरोमणि शक्ति—

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्।

अ. १६। ३। १

अर्थात् मैं ऐश्वर्यों का शिरोमणि बनूं और बराबर वालों में भी मैं शिरोमणि होऊं।

वे ऐश्वर्य क्या हैं? यह अगले मन्त्रों में बताया गया है। मन्त्रों में दो दो ऐश्वर्यों का परस्पर जोड़ा बनाया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि इनका परस्पर सम्बन्ध है, और ये मनुष्य को छोड़ कर न जावें ऐसी प्रार्थना की है। वे ऐश्वर्य क्या हैं इनको हम संक्षेप में रखते हैं।

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥२॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥३॥

विमोकश्च माद्र्पविश्च मा हासिष्टामाद्र्दानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥४॥

रुजः=दीप्ति प्रकाश, वेनः=अभीप्सा।

मनुष्य में यदि किसी वस्तु के लिये अभीप्सा व उत्कट इच्छा हो तो वह दीप्ति व प्रकाशकेलिये ही होनी चाहिये।

मूर्धा=शिर व शिरोमणि, विधर्मा=विविध धारण शक्तियां

मनुष्य को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि धारण करने योग्य नाना शक्तियां उस में शिरोमणि बनकर रहें।

उर्वः=विस्तार। चमसः=अन्न।

मनुष्य के पास अन्नों का खूब विस्तार व भण्डार होन चाहिये।

धर्ता=धारण करने वाला। धरुणः=धारण किये जाने वाला।

जिस प्रकार पृथ्वी अग्नि को धारण कर रही है और अग्नि पृथ्वी को। इसी प्रकार मनुष्य धर्ता है और अन्य प्राणादि शक्तियां धरुण हैं। इस प्रकार धर्ता और धरुण का सम्बन्ध बना रहे, ये एक दूसरे को छोड़ न जावें।

विमोकः=विसर्जन शक्ति। आद्र्पविः=जलीय वज्र।

मनुष्य में अपने अन्दर से सब प्रकार के मल व व्याधियों को दूर करने की शक्ति होनी चाहिये और इनका विसर्जन जलीय वज्र अर्थात् मूत्र पसीने आदि द्वारा होता है।

आद्र्दानुः=रस रक्त वीर्यादि जलीय-तत्त्वों को देने वाला अग्नि। मातरिश्वा=प्राणवायु।

मनुष्यशरीर में रस रक्तादि तत्त्व अग्नि के सम्पर्क से ही परिणति या परिपाक को प्राप्त होते हैं और यह शारीरिक अग्नि भी प्राणवायु के ही कारण बनी हुई है।

इस प्रकार ये सब उपर्युक्त शक्तियां मनुष्य में हों और ये एक दूसरे की सहायक हों तो शरीर सब प्रकार से स्वस्थ रहे, बीमारी न हो और दुष्वप्न्यादि रोग भी मनुष्य को आक्रान्त न करें। परन्तु ये सब उपर्युक्त शक्तियां मुख्यतया शरीर से सम्बन्ध रखने वाली हैं।

आत्मा के सम्बन्ध में अगले मन्त्र में कहा गया है।

बृहस्पतिर् म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः। ५।

मेरा आत्मा बृहस्पति बने अर्थात् ज्ञान विज्ञान से युक्त हो और इसका नाम नृमणा=नृ+मना (मनु अवबोधने) है। नृ वा नर शारीरिक शक्तियां हैं जो कि शरीर को ले

चल रही हैं। उन शारीरिक शक्तियों को यह आत्मा अवबोधन करती रहती है। अर्थात् शरीर की शक्तियों को यह आत्मा जागृत करने वाली है और इसका निवास हृदय में है।

हृदय कैसा हो ? यह अगले मन्त्र में कहा गया है।

असन्तापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥६॥

मेरे हृदय में सन्ताप न रहे, मेरे मार्ग विस्तृत हो जायें और मैं नाना धारण शक्तियों से समुद्र बन जाऊँ।

केन्द्रग-शक्तिः—

अब अगले सूक्त में, मनुष्य को सब प्रकार के ऐश्वर्यों तथा मनुष्यों की केन्द्रग शक्ति बनना चाहिए—ऐसा विधान किया है।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्। १।

मैं ऐश्वर्यों की नाभि (केन्द्रग) बनूं और बराबर वालों में भी केन्द्रग शक्ति बनूं।

मूर्धा बनने के पश्चात् केन्द्रग शक्ति बनने का क्रम आता है। मूर्धा बनने में तो स्वयं बहुत परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु जब मनुष्य ऐश्वर्य की दृष्टि से तथा अन्य सभी गुणों से बराबर वालों में शिरोमणि बनजाये तो उसे फिर सबकी केन्द्रग शक्ति भी बनना चाहिए। शिरोमणि मनुष्य स्वभावतः केन्द्रग शक्ति बनता ही है। जब मनुष्य समझ लेते हैं कि अमुक मनुष्य हम सबमें श्रेष्ठ है, शिरोमणि है, तो उसके चारों ओर चक्कर काटते ही हैं। परन्तु यदि ऐसे शिरोमणि व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा खराब हो कि सब उससे डरते हों तो फिर मनुष्य उसके चारों ओर चक्कर नहीं काटते। इसलिए मनुष्य को सब का केन्द्र भी बनना चाहिए।

आगे मन्त्रों में मूर्धाशक्ति व केन्द्रगशक्ति बनाने वाला व्यक्ति प्रार्थनाएँ करता है कि अमुक अमुक चीज मेरे अन्दर रहें, मुझे छोड़कर न जावें। वह इसप्रकार हैं—

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा। २।

यह दिव्य उषा हमारे अन्दर आकर बैठ जाये और मरणधर्मा शारीरिक अंगों में अमृत का संचार करदे।

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परागात्। ३।

मुझे प्राणशक्ति न छोड़े और अपान शक्ति भी छोड़ कर न चलीजावे।

दिव्य शक्तियों से रक्षा की प्रार्थना।

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षात्। यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥४॥

सूर्य मेरी दिन के समय रक्षा करे। वैश्वानर अग्नि पृथिवी से, वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यों से तथा सरस्वती पार्थिव पदार्थों से मेरी रक्षा करे।

इन सब शक्तियोंका ज्ञान होने से मनुष्य इसके द्वारा सब प्रकार से अपनी रक्षा कर सकता है।

स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय।

आज उषाएँ व सन्ध्याओं की वेलायें कल्याणकारिणी हो जायें। मैं सब प्रकार के जलों व शक्तिसमूहों को प्राप्त होऊँ।

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

मेरी सब इन्द्रियां शक्तिशालिनी हों। मेरे सब आन्तरिक पशु मेरे पास स्थित हों। मित्र और वरुण शक्तियां मेरे अन्दर प्राण और अपान को धारण करावें, और अग्नि मेरे अन्दर दक्षता को धारण करावे।

इस प्रकार यह १६ वें काण्ड का प्रथम अनुवाक समाप्त हुआ। इसके हम तीन विभाग कर सकते हैं।

१. जल व अग्नि के घोर रूप तथा तदुत्पन्न दोषों का शमन
२. व्यष्टि रूप से ऐन्द्रियिक शक्तियों की प्राप्ति की प्रार्थना
३. समष्टि रूप से अन्य सब शक्तियों की प्राप्तिकी प्रार्थना

यदि इस क्रम से मनुष्य रोगादिकों का शमन करते हुए सब प्रकार की शक्तियों को प्राप्त करले तो बुरे स्वप्नादि व्याधियां उसे आक्रान्त नहीं कर सकतीं। बुरे स्वप्न आदि के लिए यह प्रथम अनुवाक पूर्व सावधानता या प्रतिषेध के समान है। परन्तु यह सब सावधानता रखते हुए भी दुष्वप्न आदि शत्रु मनुष्य पर आक्रमण कर ही देते हैं इसलिए अगले अनुवाक में दुष्वप्नों के स्वरूप व उनके विनाश का भी वर्णन किया है।

दीपावली, जुआ और वेद

[लेखक—श्री क० च० राकेश]

किसी भी जातिकी जीवन-जाग्रतिके प्रथम चिह्न उसके द्वारा मनाये जाने वाले त्योहार हैं। प्रकृतिके तीन गुणोंके आधार पर मनुष्य अपनेमें उपस्थित प्रधान गुणके कारण सात्विक, राजसिक अथवा तामसिक व्यवहार करता है। त्योहार भी मनुष्योंके परस्पर के व्यवहार का सूचक है जिसके द्वारा उस जाति विशेषकी प्रवृत्ति पता लगती है। जो जाति अपनी सभ्यतामें जितनी उन्नति करती है वह उसके त्योहारोंसे प्रकट हो सकता है। त्योहारोंका सम्बन्ध जीवनके साथ रहता है। त्योहारोंका प्रभाव पूरे देश और जाति पर पड़ता है। त्योहार देशके कोने कोनेमें मनाये जाते हैं। ये वे सूत्र हैं जिसके द्वारा पूरे देशके लोग बँध जाते हैं। अच्छे त्योहार अच्छी और उन्नतिशील जातिके प्रत्यक्ष लक्षण हैं। त्योहारोंका विकृत रूप ही जातिके नाश का कारण हो जाता है।

भारतमें सब चीज़ोंका आधार वेद ही रहा है। यहां वैदिक धर्म की चातुर्वण्य और चातुराश्रम-व्यवस्था ही प्रधान चली आती है। उसीके आधारपर आर्योंके पर्वों में भी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था पाई जाती है। श्रावणी मुख्यतः एक ब्राह्मण पर्व है। विजयादशमी विशेषतः क्षत्रिय पर्व है। इसी प्रकार शारदीय नव सस्येष्टि वा दीपावली के पर्वका विशेष सम्बन्ध वैश्य कर्मसे है, इस कारण दीपावली मुख्यतः वैश्य पर्व है। इस पर्वका शुद्धनाम "शारदीय नव सस्येष्टि" ही है। वर्षा ऋतुके बाद जलके कारण नमी दुर्गन्धि आदि होती है उनकी स्वच्छता की आवश्यकता होती है। इस कारण घरोंमें लिपाई-पुताई होती है। किसान के पास नयी सावनीकी फसल रहती है। वह आनन्द से फूला नहीं समाता। वह त्योहार मना कर प्रसन्न होता है। अब शीत काल के लिए गरम वस्त्रों का प्रबन्ध करना होता है। वर्षाकालमें रोग भी बढ़ जाते हैं। वायुको शुद्ध करना भी आवश्यक है। इस कारण यज्ञ अनिवार्य हो जाता है। आर्योंके जीवनमें यज्ञका प्रधान स्थान रहा है। आर्य बिना यज्ञ किये कोई कार्य नहीं करते थे। जन्मसे मरण तक सोलह संस्कारोंमें और समय समय दूसरे अवसरोंपर सदा यज्ञ किया जाता था। नव सस्येष्टिका अर्थ है—नव=नया, सस्य=फ़सल, इष्टि=यज्ञ करना अर्थात्—नये फ़सलसे यज्ञ करना। इस प्रकार भारतमें वैश्य, किसान जो खेतीबारी और अन्न इत्यादि के रोज़गार करने वाले थे वे और अन्य लोग भी इस त्योहार पर नये अन्नसे यज्ञ किया करते थे। कार्तिकीय अमावास्या की रात्रि वर्षा की सारी रात्रियोंमें सबसे सघनतम होती है। उस रात्रि की दीपमाला का उत्सव मनाकर शोभा को बढ़ाना बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता है।

जो जाति जितनी पुरानी होती है, उसमें समय-अन्तर से उतना परिवर्तन भी आ जाता है। आर्य-जाति सब से प्राचीन है, तो इसकी संस्कृति और सभ्यता में परिवर्तन के साथ साथ इसको त्योहारों की रूपरेखा भी बदलती गयी। आजकल वैदिक कालीन पर्व शारदीय नव सस्येष्टि का तो लोप हो गया और उसकी जगह अवैदिक जुआ की प्रथा चल पड़ी है। जुआको लोग बहुत प्राचीन कहते हैं। बहुतोंका तो इतना तक अन्धविश्वास है कि दीपावलीके दिन जुआ नहीं खेलना लक्ष्मी जी को रुष्ट करना है। जुआ खेलना शुभ समझा जाता है। पिता-पुत्र गुरु-शिष्य, स्त्री पुरुष, मालिक-नौकर सब जुआ खेलने में रतजगा किया करते हैं। देशकी कितनी सम्पत्ति इस में नष्ट होती है, कितने भिखारी बन जाते हैं, इसका पूरा अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। भारतमें अन्ध-विश्वास और मूढ़ परम्परा में जकड़े रहना एक गौरव समझा जाता है। वेदोंको अपना आधार मानते हुए भी सर्वथा वेद विरुद्ध काम किया जाता है। जिस प्रकार शुद्ध ईश्वर की पूजा को छोड़ कर पत्थर पूजने लगे उसी प्रकार यज्ञ हवन को तिलाञ्जलि देकर अब जुआ खेलना अपना कर्तव्य समझ बैठे हैं। लोग यह कहते हैं कि महाभारत काल में भी जुआ खेला जाता था। परन्तु कितने दुःखकी बात है कि उसके परिणामको जानते हुए भी उससे आँख मूँद लेते हैं। महाभारत काल में आर्य संस्कृतिका नाश सा हो रहा था। इसी कारण तो श्री कृष्ण

चन्द्र को सभ्यताकी रक्षाके लिये धर्मयुद्ध करवाना पड़ा। युधिष्ठिर जैसे धर्मराज भी वेद-विरुद्ध चलने लगे थे। वे जुआमें सब कुछ हार गये। जंगल जंगल मारे फिरे। जुआका परिणाम जो हुआ सब जानते हैं तो भी इस बुरी प्रथाको प्राचीन बता कर अपना और देशका नाश करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाते।

कुछ लोग प्राचीन प्रथाका दम भरते हैं, तो कुछ नवीन प्रथाओंका २०वीं शताब्दीकी उन्नतिशील जातियों के नामपर अनुकरण करना अपना एक मात्र कल्याण का उपाय समझ बैठे हैं। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि हर चमकदार वस्तु सोना ही नहीं होती है। आजकी पाश्चात्य सभ्यता के नामपर बहुत सी कुरीतियाँ चल पड़ी हैं। भारत जो एक धर्म-प्रधान देश हैं वहां तो उन प्रथाओं का अनुकरण करना अपने गौरवको नष्ट करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सब सभ्य जातियाँ जुए के विरुद्ध हैं परन्तु जैसे नाना प्रकार की विलासिताकी वस्तुओं में लिप्त हैं वैसे जुआ भी उनके अनिवार्य कार्यक्रममें शामिल है। हां रूप रेखामें अवश्य परिवर्तन हो गया है। आधुनिक क्लब जिसमें सब सज्जन भाग लेते हैं वह एक जुएबाज़ी का अड्डा होता है। वहां 'फ़्लश' खेलते हैं, ताश के जुआ के कई प्रकारके खेल 'ब्रिज' इत्यादि होते हैं। बड़े बड़े नगरोंमें 'रेस', कार्निवाल, लौटरी, सट्टेबाजी और भिन्न २ प्रकारके सभ्य जुआ, जिसे सभ्य लोग खुले आम खेलते हैं, वे मनुष्यका मानसिक पतन तक कराते हैं। इस शताब्दीकी सबसे बड़ी देन यहभी है कि विलासकी सामग्री से उकता कर भी छुटकारा नहीं मिलता। जीवनको विलासी बनानेकी प्यास शराबकी प्यासके समान बुझती नहीं, बढ़ती ही जाती है। सूट बूट में किया जानेवाला पाप भी, पाप ही है। पोशाक शरीरको ढाक कर गीदड़से नकली शेर बना सकती है परन्तु शेरका बल और साहस तो नहीं दे सकती। उसी प्रकार 'क्लब' में जानेवाले, अपनेको सभ्य कहनेवाले सज्जन जो इस प्रकारकी कुप्रथाओंमें भाग लेते हैं, चाहे मोटरपर सवार होकर, पैरिसका बना सूट पहनकर ही 'क्लब' में क्यों न जायें परन्तु करते वही पाप हैं जो महा घोर और निन्दनीय है। सट्टेबाजीसे कोई लखपति क्यों न हो जाय परन्तु वह वेश्याके कमाये धनकी तरह ही पापवृत्ति से धन उपार्जन करता है। जहाँ पाप और पुण्यका सिद्धान्त होगा वहाँ सभी अपनेको ऐसे सभ्य कहनेवाले—असभ्य ही प्रतीत होंगे। मनुष्य कामसे जाना जाता है, उसके नामासे नहीं।

जुआ मनुष्य जातिमें बहुत ही बुरी प्रथा है। जबतक हम वेदोंकी तरफ न लौटेंगे इस प्रथाका नाश नहीं होगा। वैदिक शुद्ध और सादा जीवन बितानेसे ही ऐसी कुप्रथाओं का दमन हो सकता है' वैदिक [illegible] जुआ कोई नहीं खेलता था क्योंकि जुआ खेलनेवालोंको लोग समाज और परिवारसे निकाल देते थे। वेदो में ऐसा आदेश भी है—

अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः। पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥ ऋ० १०।३४।४।

(वाजी अक्षः) बड़ा जुआ (यस्य वेदने) जिसका हर प्रकारका धन और बुद्धि (अगृधत्) नष्ट करता है (अस्य जायां अन्ये परिमृशन्ति) उस जुआबाज़की स्त्री तक दूसरे की सहायताके अधीन हो जाती है। (पिता, माता, भ्रातर एनं आहुः) बाप, मां, भाई सभी उसके विषयमें कहते हैं कि (न जानीमः) हम लोग उसे नहीं जानते और न अपना समझते हैं। (एतं बद्ध नयत) इसको बांधकर ले जाओ।

इस प्रकार सम्बन्धी लोगों के द्वारा जुए बाजों का समाज में तिरस्कार करने से उनका सुधार हो सकता है। परन्तु इस समय तो चाहे जुआ हो, चाहे डाका, चाहे स्त्री दूसरे के आधीन हो जाय परन्तु यदि धनकी प्राप्ति हो तब सब कल्याण और उत्तम ही है। धन ही जीवनका लक्ष्य हो गया है, चाहे 'रेस' से मिले चाहे सट्टेबाजी से। अन्त भला तो सब भला और ऐसी ही सभ्यता का दम भरा जाता है। यह है आज कल का पतन।

जुआ के द्वारा कभी शान्ति नहीं मिल सकती। पाप बीज का फल फूल भी पाप ही होगा। जूआ का परिणाम बुरा ही होता है। ऋ० १०. ३४. १०. में यह मन्त्र जूआ का परिणाम स्पष्ट बतलाता है—

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क स्वित्। ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥

(कितवस्य जाया) जुयेबाज़ की स्त्री (हीना) दुर्भाग्य को प्राप्त होकर (तप्यते) दुख भोगती है। (क स्वित् चरतः पुत्रस्य माता) इधर उधर मारे मारे फिरने वाले जुएबाजकी माता रोती रहती है। (ऋणावा बिभ्यत्)

कर्जसे लदा हुआ जुएबाज़ भयमें रहता है और (धनं इच्छमानः नक्तं अन्येषां–अस्तं एति) धन की इच्छासे वह रात्रि कालमें दूसरोंके घरमें घुसता है। जुएबाज की यह दशा वेदमें बतलाई गई है। उसकी माँ रोती फिरती है। स्त्री मारी मारी फिरती है। वह सदा कर्जमें रहता है। जुएकी लत पड़ जानेपर उसे धनकी आवश्यकता होती है। नहीं मिलनेपर वह रात्रिको दूसरोंके यहां चोरी तक करके जुएकी प्यास को बुझाना चाहता है। और अन्तिम परिणाम क्या होता है सुनिये—

पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्सो
अग्नेरन्ते वृषलः पपाद॥

ऋ० १०।३४।११

[पूर्व अह्णे] प्रातः काल [बभ्रून् अश्वान् युयुजे] सुन्दर रंगके घोड़ोंसे युक्त रथपर बैठनेवाला [सः हि वृषलः अग्नेः अन्ते पपाद] वही जुएबाज शामको अपना सब नष्ट कर सर्दी निवारण के लिए आगके पास बैठता है अर्थात् जो जुएबाज रथ रखता है, वही जुएके द्वारा सब धन हार कर वस्त्र तक को मुहताज हो जाता है और आगके पास ही अपना बाड़ा गुजारता है। धनीसे धनी मनुष्य भी निर्धन हो जाता है। इस कारण जुएसे बचना भी बड़ा महान् कार्य है। यह एक प्रकारका तप है। मनकी वृत्ति का निरोध करना ही इससे बचने का उपाय है। जुआ खेलनेमें अन्य भौतिक विलासिताके समान पहले बड़ा आनन्द प्रतीत होता है परन्तु है यह मीठा जहर। इसमें वह ज्वाला छिपी होती है जो सब कुछ नष्ट कर देती है। वेदोंमें इसकी उपमा देते हुए अङ्गारोंसे दी गई है जो एक रोज धधक कर सब कुछ भस्म कर देते हैं। ऋग्वेदके १०।३४।९ के एक मन्त्रका अंश निम्न प्रकार है—

दिव्या अंगारा इरिणो न्युप्ताः
शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति॥

[दिव्याः] जूआ के पासे [अंगाराः] वह आग के शोले हैं [शीताः सन्तः हृदयं दहन्ति] जो ठण्डे होने पर भी हृदय को जला देते हैं। इन शब्दोंमें वेदोंने जूए की शक्तिको बतलाया है। वह शान्त होनेपर भी नाश ही करता है और यदि कहीं जुएकी अग्नि धधकती रही तो वह जाति और देश किस रसातलको प्राप्त होगा, ईश्वर ही जाने!

देशमें सभ्य रीतिपर जनताकी कार्निवाल, रेस, लाट्री इत्यादिके द्वारा जुआ खेलनेकी जो मनोवृत्ति पैदा की जारही है उसका विरोध होना आवश्यक है। अपनी संस्कृति की रक्षाके लिए इन घातक खेल तमाशों का नाश अनिवार्य है। इन कुप्रथाओंको सरकारके द्वारा रोकने का पूर्ण उपाय होना चाहिए। जुआ खेलना एक प्रकारसे सिखाया सा जारहा है, जैसे चायकी कम्पनियां प्रथम मुफ्तमें चाय बाँटती हैं; सिगरेट कम्पनियाँ मुफ्त में सिगरेट बाँटती हैं; और भोली जनता यह समझ कर कि 'मुफ्त हाथ आये तो बुरा क्या है?' — चाहे विष ही मुफ्त क्यों न मिले!—अपनाने लगती है। फिर तो कुछ दिनोंमें उसके अभ्यस्त बन जाने पर सारा धन इनही दुर्व्यसनोंपर खर्च होने लगता है और ऐसे रोजगारियों का उल्लू सीधा हो जाता है। परन्तु इससे राष्ट्र की बड़ी हानि होती है। सभ्यता के नाम पर होने वाली इन सब कुरीतियों का विरोध करना ही देशको पतन से बचाना है।

जुआ के द्वारा धन कमाने की आशा मनुष्य को अकर्मण्य बना देती है। वह सात्विक वृत्तिसे धनको कमाना नहीं चाहता। उसे अधिक से अधिक धनकी इच्छा बढ़ती ही जाती है। इसलिए ऋग्वेदमें ईश्वरने स्पष्ट आदेश दिया है—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व
बहु मन्यमानः। तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे विचष्टे सविताऽयमर्यः॥

ऋ० १०.३४.१३

(कितव अक्षैः मा दीव्यः) हे जुआ खेलनेवाले, जुआ मत खेल; (कृषिं इत् कृषस्व) निश्चय खेती ही कर (बहु मन्यमानः वित्ते रमस्व) अपने धन को बहुत समझकर उसीसे अपना जीवन गुज़ार; (तत्र गावः तत्र जाया, अयं अर्यः सविता तत् मे विचष्टे) वहां तेरी गायें हैं, और वहां तेरी स्त्री है, उनको देख और उनका उत्तम रीतिसे लालन पालन कर; वे ही तेरा कल्याण करनेवाले हैं।

वेदमें मनुष्यके लिए सदा स्वाभाविक जीवन बिताने का आदेश है। वेद कर्मयोगपर ज़ोर देता है। ४ आश्रम ही—बचपनसे लेकर वृद्धावस्था तक—कर्म करते करते मर जाने का एक उत्तम कार्यक्रम है। गृहस्थ-जीवन में

धन कमानेका आदेश है परन्तु वह सात्विक वृत्ति और मेहनतकी कमाई होनी चाहिए, और जितनी आवश्यकता हो उतना ही उसका उपयोग करना उचित है, अधिक एकत्र करना चोरीमें गिना जाता है। वेदोंने कृषिको प्रधान कार्य बतलाया है। इसके द्वारा ईश्वरकी सृष्टि में मनुष्यके अतिरिक्त दूसरे प्राणियोंको भी अन्न प्राप्त होजाता है जिससे वे जीवित रहते हैं। इसमें चोरी बेईमानीकी कहीं गुंजाइश नहीं है। इसीलिए वेदोंमें स्पष्ट आदेश दिया कि कृषि करो; जुआ खेलकर, धन एकत्र कर धनी बननेका लालच छोड़दो। क्या अपने देशके हर प्रकारके जुएबाज़ वेदके इस आदेशको ग्रहण कर अपना और अपने देशका कल्याण करेंगे? क्या वे अपनी मेहनतकी कमाईपर ही निर्भर रहेंगे?

ईश्वर करे विश्व में पुनः वैदिक सभ्यता स्थापित हो। सब लोग उत्तम कर्तव्य करते हुए एक आदर्श जीवन व्यतीत करें, जिससे सबको सुख और शान्ति मिल सके।

—०—

वैदिक विचार-विमर्श

[लेखक—आचार्य श्री वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए०]

[इस स्तम्भ में स्वाध्याय-शील वैदिक धर्मियों द्वारा प्रस्तुत की गई शङ्कायें तथा उनके समाधान पाठकों के लिये प्रस्तुत किये जाया करेंगे। विद्वानों से प्रार्थना है कि वे शंकाओं के अच्छे अच्छे युक्तियुक्त सप्रमाण समाधान प्रकाशनार्थ भेजनेकी कृपा करें। —सम्पादक]

आचार्य विश्वश्रवाः का एक प्रश्न :—

आर्य-मित्र २२ सितम्बर १९४९ के अंक में बरेली-निवासी आचार्य विश्वश्रवाः का निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित हुआ है—

"महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने जो यज्ञ की पद्धति लिखी है उसमें आहुति के मन्त्रों में स्वाहा के साथ 'इदं न मम' वाक्य भी रखे हैं जैसे—

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदं न मम।

परन्तु कुछ आहुति मन्त्रोंमें 'इदं न मम' नहीं है जैसे

१—सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।

२—यां मेधा देवगणाः।

इत्यादि कुछ मन्त्रों में 'इदं न मम' के वाक्य नहीं रखे हैं। किन्हीं मन्त्रोंमें हैं किन्हींमें नहीं, इसका कारण क्या है? पूज्य स्वामी वेदानन्द जी, पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, पं० रामचन्द्र जी देहलवी, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, इत्यादि अनेक विद्वानों के सामने यह समस्या रखी है पर पर अभी निश्चय नहीं हो पाया।

कुछ मन्त्रों में 'इदं न मम' नहीं है इसका कारण लिखने में आर्य विद्वान् सहयोग देवें। यह एक विज्ञापन है यदि इस का समाधान किसी के पास नहीं है तो ग्रन्थ में यही प्रकाशित कर दूंगा कि इस समय तक के विद्वानों को इस का उत्तर नहीं मालूम है। यदि कोई उत्तर देगा तो उसका नाम धन्यवाद पूर्वक प्रकाशित कर दूँगा। मैं भी स्वयं अभी तक विचार कर रहा हूँ"।

अभी तक इस प्रश्नका समाधान आर्यमित्र आदि पत्रों में मेरे दृष्टिपथ में नहीं आया। अतः इस समय साधारण रूप से ही इस पर विचार किया जाता है।

१. 'इदं न मम' का प्रयोग उन्हीं मन्त्रों के साथ किया गया है जिनमें किसी देवता-विशेष (अग्नि, वायु, प्रजापति, इन्द्र, आदित्य, प्राण, अपान, व्यान आदि) के नाम के आगे सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति लगाकर 'स्वाहा' कहकर आहुति देने का विधान है। पाणिनि मुनि के अनुसार सम्प्रदान कारकमें चतुर्थी विभक्ति होती है (सम्प्रदाने चतुर्थी) और 'कर्मणा यमभिप्रै ति स सम्प्रदानम्' किसी कर्म के द्वारा कर्त्ता जिसके प्रति अपना अभिप्राय प्रकट करता है वह सम्प्रदान कारक होता है। इस प्रकार आहुति रूपी कर्म द्वारा जिस देवता (प्रतिपाद्य विषय) के प्रति होता ने अपना अभिप्राय प्रगट कर यह आहुति

दी, उसी देवता के लिये उस आहुति का विधान करके यज्ञ की परोपकार भावना प्रकट करते हुए 'इदं न मम' भी कह दिया अर्थात् 'वह क्रिया मेरे निजी स्वार्थ के लिये नहीं अपितु परोपकार के लिये ही की गई है'। जैसे—'अग्नये स्वाहा' आदि।

२. जहाँ पर देवताविशेष का सम्बोधन कर किसी प्रकार की प्रार्थना करते हुए हवन में डालने योग्य पदार्थ का नाम लेकर आहुति दीगई है जैसे 'अयन्त इध्म आत्मा जातवेदः' इत्यादि में, तथा

३. जहाँ पर सम्बोधन तथा प्रार्थनाके विना भी आहुति देने योग्य वस्तु का और उसको हवन में छोड़ने का वर्णन है जैसे 'समिधाग्निं' इत्यादि ३ मन्त्रों में, वहाँ पर भी 'स्वाहा' के पश्चात् अग्नि अथवा उसके पर्यायवाची शब्द के साथ (विशेषण लगाकर अथवा विना विशेषण लगाये हुए ही) चतुर्थी विभक्ति (सम्प्रदान कारक) लगाकर 'इदं न मम' का प्रयोग किया गया है।

४. जहाँ पर किसी देवताविशेषका सम्बोधन करके वर्णन नहीं, प्रत्युत केवल कोई तथ्य (सिद्धान्त) प्रकट किया गया है वहाँ 'स्वाहा' (यह सत्यवचन, सत्यक्रिया, मधुर वचन है) यह कहकर आहुति तो दी गई किन्तु 'इदं न मम' नहीं कहा, क्यों कि वहाँ अपने स्वार्थत्याग को प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं। जैसे—'सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा' 'आपो ज्योतिरसोऽमृतं' 'यां मेधां देवगणाः' इत्यादि में।

महाशय रहतूलाल जी के प्रश्न

गंगोह (सहारनपुर) निवासी श्री रहतूलाल जी अपने पत्र में लिखते हैं—

"शोक है कि आर्य-समाजके आर्य-भाइयों में खोज व स्वाध्याय की बड़ी न्यूनता है। मैं वेदवाणी के लेखों से प्रति प्रसन्न हूँ। हर मास वेदवाणी अंक को आदिसे अन्त तक अक्षरशः देखता हूँ। वास्तविक प्रयोजन पत्र लिखने का यह है कि मुझे विद्या न होने पर भी स्वाध्याय और खोज की लगन है। मैंने कई जगह पत्र लिखे परन्तु निराशा ही रही। यदि आप पत्र द्वारा अथवा वेदवाणी द्वारा उत्तर दें तो कृतज्ञ हूँगा। जैसा उचित समझें।

मैंने भी पं० शिवशर्मा जी सम्मल, सार्वदेशिक सभा देहली, हितैषी सम्पादक प्रकाश देहली को लिखा था और समय अनुसार जो मिलते रहे उनसे भी पूछता रहा, परन्तु उत्तर न मिला।"

उनके प्रश्न तथा उनका समाधान यहाँ दिया जाता है।

प्रश्न १.—सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय आवृत्ति, समुल्लास २ आरम्भ में ही 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' ऋषि ने शतपथ का वचन लिखा है परन्तु वहां इस में 'पुरुषो वेद' नहीं। इस भेद का कारण ?

समाधान—यह ठीक है कि वर्तमान मुद्रित माध्यन्दिन शाखा के शतपथ ब्राह्मण में 'पुरुषो वेद' शब्द नहीं मिलते, 'मातृमान् पितृमानाचार्यवान्' लिखकर उस की प्रशंसा में बहुत सी बातें कही गई हैं। (जैसे देखिये शतपथ ब्राह्मण काण्ड १४, अध्याय ६, ब्राह्मण १०, खण्ड २, ५,८, ११, १४, १७) श्री वेबर कृत अंग्रेजी संस्करण में तथा काण्व शाखा के शतपथ ब्राह्मण में भी वे शब्द नहीं मिले। किन्तु उससे ऋषि के सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आता। इस सम्बन्ध में निम्न बातें ज्ञातव्य हैं—

(अ) ऋषि ने न जाने शतपथ ब्राह्मण की कौन सी हस्तलिखित प्रति का उपयोग किया था। इसका ठीक पता नहीं। हस्तलिखित प्रतियों में प्रायः पाठभेद रहते हैं सम्भव है उस प्रति में 'पुरुषो वेद' शब्द भी हों।

(आ) यह भी सम्भव है कि स्वामी जी ने किसी दूसरी शाखा के शतपथ ब्राह्मण को देखकर लिखा हो जिसमें ये शब्द हों। पहले केवल माध्यन्दिन शाखा का एक ही शतपथ मिलता था अब दूसरा काण्व शाखा का भी मिलने लगा है। इसी प्रकार कदाचित् ऋषि ने किसी तीसरी ही शाखा का उपयोग किया हो।

(इ) 'यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है-इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि इस प्रकार का भाव शतपथ में आया है (यह आवश्यक नहीं कि बिलकुल वेही अक्षर भी आये हों)। मुद्रित पुस्तकों के अभाव में किसी स्थान पर पढ़ी हुई जो बात स्मृति पटल पर अंकित हुई उसे ऋषि ने कई स्थलों पर अपने शब्दों में लिखा है। यहाँ भी यही बात हो सकती है। जैसे एक स्थान पर शतपथ में है 'यथा मातृमान् पितृमानाचार्यवान् ब्रूयात् तथा तच्छौल्वायनोऽब्रवीत्' अर्थात् जैसे श्रेष्ठ माता, पिता, आचार्य वाला बातचीत करता है वैसे ही शौल्वायन ने बातचीत की। इससे यह भाव निकलता है कि 'अच्छे, माता, पिता, आचार्यवाला अच्छी प्रकार बातचीत करता है; ठीक ऐसा ही भाव सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत वाक्य से निकलता है कि 'अच्छे माता, पिता, आचार्य-वाला व्यक्ति अच्छा विद्वान् होता है। (क्रमशः)

वैदिक धर्म और आर्य-समाज के सच्चे सेवक

स्वर्गीय श्री खमान सिंह का संस्मरण

श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

संसार में अनेक व्यक्ति आते हैं और चले जाते हैं। इसी का नाम ससार है। विशिष्ट पुरुषों की विशेष स्मृतियां रह जाती हैं। श्री ठा० खमानसिंह जी उन्हीं व्यक्तियों में से थे। वैदिक धर्म और आर्य-समाज में अद्भुत गहरी लग्न मैंने सदा उन के अन्दर देखी। इस के लिये वह बहुत ही गहरा विचार करते थे। चाहते थे कि सारा भारतवर्ष कुरीतियों और अज्ञानको छोड़कर शीघ्रसेशीघ्र वैदिक धर्मकी छत्र छाया में आकर अपना कल्याण करे। जहां वह आर्य-समाज के अनन्य भक्त थे वहां वह देश भक्त भी बड़े थे। शुद्धि के कार्य में उन्हों ने प्राणपण से सहयोग दिया। क्रियात्मक रूपमें अपने तथा अपने परिवार के कई पुत्रों का विवाह शुद्ध हुये वा बिरादरी से पीड़ित परिवारों में कर एक सच्चे आर्य-पुरुष का आदर्श रखा। अलीगढ़ जिले में 'आर्य-मित्र' और 'मतवाला' पत्र को वह बड़े चाव से पढ़ते थे।

स्वर्गीय वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के आश्रमके आरम्भ से तीन सहायकों ठा० रामचन्द्र सिंह ठा० चन्दनसिंह ठा० कृष्णसिंह जी—के साथ चौथे ठा० खमान सिंह जी थे जिन की गम्भीरता और दूरदर्शिता से आश्रम को बहुत लाभ हुआ। आश्रम के वह अत्यन्त भक्त रहे।

गुरुकुल वृन्दावन में मुख्याधिष्ठाता पदपर रहते हुए अपने एक पुत्र को आर्ष पाठविधि में लगाया! आर्ष पाठ विधि में उन की पूरी श्रद्धा थी। आश्रम में भी इस पाठ विधि को चलाने की उनकी हार्दिक प्रबल इच्छा थी।

आप की आयु ८१ वर्ष की थी। इनका जन्म कार्तिक कृष्ण नवमी संवत् १९२५ का था। अन्तिम श्वास तक इन की स्मृति और मस्तिष्क सर्वथा ठीक रहा। बहुत समय से रुग्ण रहने पर भी मृत्यु से आठ दिन पूर्व तक शौचालय में शौच के लिये जाते, स्नान करते, सन्ध्या अग्निहोत्र आर्याभिविनय और उपनिषद् का पाठ स्वयं करते रहे यहां तक कि मरने से आध घन्टा पहिले भी चौकी पर बैठ कर शौच क्रिया की। किसी ने पूछा सेवा, तो कहा "वैदिक धर्म की सेवा"। मृत्यु से दो घण्टे पूर्व कहा "फटे चिथड़े को फैंककर नवीन चोला लेना है" १ मास पूर्व कहा कि "देखना अन्तिम श्वास तक मेरा धैर्य नहीं छूटेगा, और न मेरे मस्तिष्कमें कोई विकार उत्पन्न होगा' ऐसा ही हुआ। अन्तिम श्वास तक न घबराहट न कराहट का कोई शब्द मुख से निकला।

अपने (वैदिक धर्मके भी सच्चे) उत्तराधिकारी, ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म में परम निष्ठावान्, ज्येष्ठ पुत्र श्री डा० महावीर सिंह जी सिविल सर्जन ग्वालियर को अन्तिम पत्र में लिखा—"अधिक जीने की मुझे इच्छा नहीं है, न मृत्यु से मुझे भय है। कोई अभिलाषा भी शेष नहीं है केवल एक इच्छा अवश्य शेष है जो मृत्यु पर्यन्त रहेगी कि ऋषिदयानन्द ने जो महान् उपकार किया है उनके बतलाये हुये वैदिक धर्म की मैं कुछ सेवा न कर सका"। वैदिक धर्म में उनकी सच्ची निष्ठा का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

क्या कहना! अपनी पुत्री के विवाह में इस एक वीर आर्य पुरुष को संस्कारविधि में आये ४ मन्त्रों को (जिन्हें अब विवादास्पद बतलाया जाने लगा है) को नीचे लिखे अर्थों सहित पढ़ते देख कर इन पङ्क्तियोंका लेखक आश्चर्य चकित रह गया। जिद्दी माने जाते थे, तभी तो अन्तिम श्वास तक घबराहट नहीं हुई। यहआजोऽस्योजो मयि देहि का ही फल समझना चाहिये। वह अवश्य ही नये चोले में वैदिक धर्म की ऊंची सेवा करें उन की इच्छानुसार—हम भी यही प्रभु से प्रार्थना करते हैं और परिवार में वैदक धर्म की भावना सदा बढ़ती रहे यह, जगन्नियन्ता से मंगल कामना है। पुराने आर्य पुरुषोंकी यह एक झांकी है।

—०—

भक्ष्याभक्ष्य पर स्वामी जी के विचार

भारतवर्ष में वर्ण व्यवस्था प्रधान होने के कारण अन्य जातियों में परस्पर खान पान आदिका निषेध किया गया है। इसके मूलमें वही वैदिक भावनाएँ कार्य करती रही है जिनका कि निर्माण हमारे विद्वानों और ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पहले किया था। आगे चल कर स्वामी दयानंद जी ने भी उन्हीं वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। प्रस्तुत लेख में स्वामी जी के भक्ष्याभक्ष्य पर किये गये विचारों की रूपरेखा का आभास पाठकों को मिलेगा।

स्वामी जी के मतानुसार भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है (१) धर्म शास्त्रोक्त (२) वैद्यक शास्त्रोक्त। धर्मशास्त्र में लिखा है कि चारों वर्णों को मलीन, विष्ठा, मूत्रादि से उत्पन्न हुए फल, शाक, मद्य, भंग, गाँजा, अफीम, आदि के पास भी न जाना चाहिए। गले, सड़े, बिगड़े पदार्थों को छूना भी न चाहिए। गौरक्षा आर्यों का प्रथम कर्त्तव्य है। एक गाय के बछड़े, बछड़ियों के उत्पन्न किये हुए अन्न से एक पीढ़ी में ४७५६०० मनुष्यों का पालन होता है। उपरोक्त आधार अनुमानित है। गायका दूध बुद्धि और मस्तिष्क को लाभ प्रद होता है। हिंसक पशु तथा जानवरों की हिंसा करना क्षत्रियों का धर्म है पर उनका माँस स्वयं न खाए बल्कि माँसाहारी कुत्ते आदि को खिलादें या फेंक दें।

जो पुरुष चोरी, हिंसा, विश्वासघात, छल, कपट, आदि कुकर्मों से प्राप्त हुआ अन्न खाता है वह अन्न उस पुरुषके लिये अभक्ष्य कहलाता है। जिस प्रकार कि एक कथा है कि चोर के यहाँ भोजन करने से पण्डित जी की भी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी और चोरों जैसी मनोवृत्ति होजाने के कारण ही वे राजमहल से हार चुरा लाये थे। बाद में जब उन्हें शौच आदिसे निवृत्त होने पर अपनी भूल ज्ञात हुई तब बड़ा दुःख हुआ उन्होंने हार को वापस कर राजा से क्षमा माँगी और कहा कि उस दिन चोर के यहाँ भोजन करने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी जिसके परिणाम स्वरुप यह दुर्गति हुई।

अहिंसा और धर्म आदि कार्यों से प्राप्त साधारण अन्न भी भक्ष्य होता हैं। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, आदिकी वृद्धि होवे पदार्थ भक्ष्य हैं। यथोचित समयपर मिताहार करना भक्ष्य कहलाता है। बिना अवसर खाना और अधिक खाना अभक्ष्य भोजन कहा जाता है।

यदि कोई पूछे कि एक साथ मिलकर खाना बुरा है या अच्छा तो इसका उत्तर होगा बुरेसे भी बुरा, क्यों कि प्रत्येक मनुष्य की एक दूसरे से प्रकृति और स्वभाव नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त यदि दूसरे पुरुष को कोई रोग हो तो वही रोग खाने वाले को भी लग जाता है। एक दूसरे के श्वास और मुख के अणु भी दूसरे से मेल नहीं खाते। इस प्रकार ज्ञात हुआ कि सह भोजन का प्रभाव प्रकृति, श्वास और मुखपर ही नहीं पड़ता बल्कि मस्तिष्क और बुद्धि पर भी होता है। अतः आर्यों को चाहिए कि वे एक साथ एक वर्तनमें सहभोज को सर्वथा त्याग दें, तभी उनका अधिक कल्याण और हित हो सकता है।

राधेबिहारीलाल, 'साहित्य-रत्न'

—०—

बिरादरी पर बम्बार्डमेंट

लेखक—श्री हरिशंकर शर्मा

हज़ार लानत ! लाख लानत !! यार ! इस बिरादरी पर करोड़ लानत ! तबाह कर दिया ! सारे मुल्क पर मुसीबत ढा दी ! फिर भी यह कम्बख्त प्लेग के कीड़ों या नौकरशाही के आतङ्ककी तरह बढ़ती ही चली जाती है । पकड़ो, मारो इस चुड़ैल को बरबाद करदो । देखना, कहीं साँस चलती बाकी न रह जाय ।

\+ + +

भाई, बड़े नाराज़ हो, आखिर इस बिरादरी बुढ़ियाने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? इस बेचारी से क्या खता बन पड़ी है, जो तुमने उसके क़तलेआम की ठान ली । कोई अपराध भी तो हो, कोई उस ग़रीबनी का कसूर भी तो बताया जाय ? या यों ही पायज़ामे में से निकले पड़ते हो ।

\+ + +

बस, चुप रहो, तुम्हें क्या समझावें ? तुम तो समझते ही नहीं, खुदा ने इतनी अक्ल ही नहीं दी । मारो, मारो, जहाँ कहीं भी बिरादरी मिले, मारो ! जरा भी रियायत या हिमायत न करो । मारो, मारो, उस चामुण्डा का चुट्टा पकड़ लो !

\+ + +

खबर नहीं है, अब हम 'जात-पाँत तोड़क-मण्डल' के सदस्य हो गये हैं । बिरादरी बिल्डिंग को बरबाद करने की कसम खा चुके हैं, कौमियत का किला तोड़ने का बीड़ा उठा चुके हैं । बस, मारो, मारो, इस बिरादरी बिलौटी को मारो । इस कुलटाने सारे मुल्क को तबाह कर दिया !

\+ + +

अरे यार, छोड़ो इस अनर्गल आलाप को । तुम्हारी शक्ति में हो तो मारो, मारो और जरूर बिरादरी बुढ़िया को मारो । पर, सारा जोर—सारा जोश और सारा आवेश इसी वक्त क्यों खर्च किये डालते हो ? थोड़ा फिर के लिये भी रहने दो ।

\+ + +

ओ निर्बल आत्मा ! तुम क्या ताना देते हो ? क्या मजाक उड़ाते हो ? याद रहे, हम 'जात-पाँत-तोड़क मण्डल' के मेम्बर हैं—बिरादरी की बुनियाद हिला देंगे और उसे मिट्टी में मिला देंगे । समझे, तुम से भीरु भला क्या कर सकते हैं ? थोड़े दिन ज्यों-त्यों जीवित रह कर केवल मर सकते हैं । हम बिरादरी को नष्ट करके दम लेंगे । यह एक धर्मवीर की दृढ़ प्रतिज्ञा है ।

\+ + +

अच्छा, मगज क्यों चाट रहे हो, जो मन में आवे करना । उबले क्यों पड़ते हो, कुछ करके तो पहले दिखाओ । हाँ, खबर है कि नहीं ? आज दोपहर के ग्यारह बजे चुंगी का चुनाव है । बोलो किस को वोट दोगे ; किसको अपने 'वार्ड' से मेम्बर बनाओगे ?

\+ + +

किसको—यह तुमने खूब कही ! भाई, मैं तो महीने भर पहले लाला लपचूलाल से वादा कर चुका हूँ । कोई लाख बके, पर मैं तो अपना 'वोट' उन्हीं को दूँगा । वीर एक बार प्रतिज्ञा करता है, बात को दो दफे नहीं कहता ।

\+ + +

अच्छाजी, लाला लपचूलाल को ! और किसी को नहीं । मगर 'वार्ड' से तो और भी कई बड़े सुयोग्य सज्जन उम्मेदवार हैं, उन्हें अपना वोट क्यों नहीं देते ! वह तो जनता की सेवा भी खूब करेंगे । अच्छा, मैं समझ गया, समझ गया, लाला लपचूलाल आपकी बिरादरी के हैं, इसीलिये उनके लिये आप अपनी राय देंगे, इसीलिये उनसे वादा कर चुके हैं । पर, क्या बाबू विनायक सिंह शास्त्री से उनकी योग्यता अधिक है ? भाई योग्यता देख कर राय दो । बिरादरी पर मत मरो ।

\+ + +

बस, भाई बहुत बातें न बको, तुम से पहले ही कह दिया कि अब हम बेहूदी बिरादरी को कभी जिन्दा न छोड़ेंगे, उसके दाँत तोड़ेंगे और नेत्र फोड़ेंगे । भाई कह की बिरादरी चुड़ैल !!! लानत बिरादरी को ! धिक्कार इस दुष्टा को !! यार ! ला० लपचूलाल से तो हमने जात-पाँत तोड़क मण्डल का मेम्बर बनने से पहले ही प्रतिज्ञा करली थी । समझे की नहीं ?

\+ + +

अच्छा तुम्हीं बताओ । क्या अब मैं प्रतिज्ञा भंग का पाप अपने मत्थे मढ़ूँ ? क्या इस गुनाह-ए-अजीम को अपने सिर पर लूँ ? एक दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति प्रतिज्ञा-पालनी

के आगे, भला किसी की योग्यता अयोग्यता का कभी ध्यान कर सकता है ?

\+ + +

बेशक, लाला लप्चूलाल 'मण्डल की मेम्बरी' से पहले, मेरी बिरादरी के थे, पर अब नहीं हैं। अब तो, महाशय ! मेरी कोई बिरादरी ही नहीं, मेरा किसी बिरादरी से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रहा ! अगर मैं अब लाला लप्चूलाल को अपना वोट दूँगा तो बिरादरी की वजह से नहीं, प्रत्युत प्रतिज्ञा-भंग दोष से बचने के कारण। एक धर्मवीर को ऐसा करना ही चाहिये ! ऐसा होता ही आया है। क्यों न ?

\+ + +

गोली मारो 'मेम्बरी' को और डेली डालो 'वोट' पर। कहो मालूम है कि नहीं—तुम्हारे प्रमोदने इस साल बी० ए० पास कर लिया ! सैकिण्ड डिवीजन में आया है।

\+ + +

वाह ! वाह !! दोस्त, और हुआ सो हुआ, यह खूब सुनाई, मुबारक ! मुबारक !! परमात्मा उसको चिरायु करे। अच्छा कब खबर आई, वह तो ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज में पढ़ता था न—हाँ हाँ, कल ही तो आगरा से एक मित्र का तार आया है।

\+ + +

वाह, यह खूब खुशखबरी सुनाई। अच्छा अब प्रमोद का विवाह कर डालो। अब तो उसकी आयु २२ साल की हो गई इधर बी० ए० भी हो गया। फिर क्या देर-दार है। बिरादरी की लड़की बड़ी सुशिक्षिता है, मगर आप तो बिरादरी को मानते ही नहीं, बिरादरी में उसकी शादी क्यों करने लगे ?

\+ + +

भाई, सच समझना, बिरादरी का नाम सुनकर मेरी आँखों से खून के फ़व्वारे छुटने लगते हैं उसका जिक्र आते ही क्रोध से चेहरा तमतमा उठता है। मारो, इस कमबख्त बिरादरी का, भाइयो, जिन्दा मत छोड़ो। जहाँ मिले मारो, जब मिले मारो। आई कहीं की चुड़ैल, भुतनी, डाकनी, पिशाचनी।

\+ + +

यार, तुम भी बड़े खब्ती हो, 'जात-पाँत तोड़क मण्डल' के मेम्बर क्या बने कयामत आगई ! पूछते कुछ हैं, बकने कुछ लगते हो। जिक्र प्रमोद के विवाह का था, व्याख्यान झाड़ने लगे बिरादरी पर। ऐसा भी क्या जोश, इतना भी क्या 'रिफार्म' ?

'पूछे' अगर जमीं की कहें आस्मां की बात।'

'प्रमोद का विवाह ?—हां प्रमोद का विवाह ! भाई, ये घर वाले बड़े कम्बख्त हैं, बुढ़िया बड़ी जिद्दन है, वालिद की न मानें तो आफ़त, औरत की न सुनें तो क़यामत ! भाई घर से निकलने की धमकी देता है और भतीजा असहयोग करने को तैयार है। बहिन ने साफ़ इनकार लिख भेजा है। बुआ का अभी कोई जवाब नहीं आया।

\+ + +

वही पागलों का सा बकवाद ! अरे भाई, तुमने इतनी बातें कह दीं, पर इन सबका मतलब क्या हुआ ? नतीजा क्या निकालें ! आखिर कुछ बात भी तो हो। तमाम खानदान की तो समालोचना, पर असली बात का जिक्र भी नहीं। मैं तो प्रमोद के विवाह की बावत पूछ रहा था। कब करने का विचार है।

\+ + +

यार यही तो मैं भी कह रहा हूँ, घर वालों ने नहीं माना, उसकी सगाई कर ली और इसी बिरादरी में करली जिसका मैं घोर शत्रु हूँ। भाई, जब तक ये बुड्ढे रहेंगे किसी को कुछ नहीं करने देंगे। देखा, बुढ़िया प्राण देने को तैयार हो गयी। 'मेरी जिन्दगी में बिरादरी से बाहर विवाह ! शिव ! शिव !! राम ! राम !!' पिताजी की तो कुछ पूछो नहीं, वह तो मुझे पल्ले सिरे का पागल और अव्वल दरजे का उल्लू समझते हैं।

\+ + +

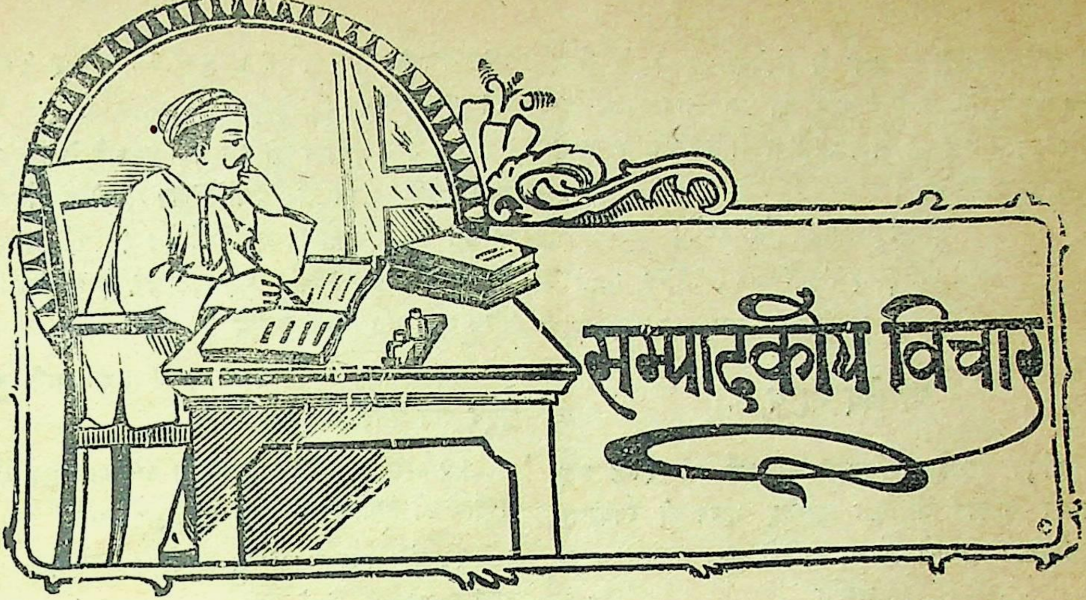
अच्छा तो, प्रमोद की सगाई हो गई, और बिरादरी में ही हो गई ! अह ह ह ह ह ! (कहकहा लगाता है) अहो, बिरादरी में ही। अह ह ह ह ह ! (फिर कहकहा लगाता है) दोस्त, सगाई तो गुप चुप कर ली, कहीं बारात के वक्त मत भूल जाना, आंखों पर ठीकरी न रख लेना !

\+ + +

हँस लो; यार हँस लो !! दो लड़कियां और तीन लड़के अभी और कुआंरे हैं। इनकी शादी हुई फिर देखना बिरादरी का कैसा सिर फोड़ता हूँ—उसके कैसे दाँत तोड़ता हूँ ! तलाश करने पर भी तब कहीं बिरादरी का कोई निशान भी मिल जाय तो मुझसे कहना। परमात्मा ने मुझे पैदा ही इस काम के लिये किया है। मैं 'जात-पाँत तोड़क मण्डल' का मेम्बर ही इसलिये बना हूँ। बस ! बिरादरी का बलिदान मेरे हाथ ही लिखा है।

÷ ÷ ÷

—०—



महर्षि दयानन्दकृत वेद-भाष्यकी स्थिति

आज हम एक अत्यन्त आवश्यक पत्र प्रकाशित कर रहे हैं जो आर्य-समाज के लिये अत्यन्त महत्त्व का है। इस पत्र से ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्यकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान पूरा पूरा मिलता है। वैदिक यन्त्रालय में छापे ऋग्वेद भाष्य की ९ जिल्दों अर्थात् सब भागोंके मुख पृष्ठ (टाइटल) पर सब संस्करणों में बराबर (प्रत्येक भाग पर) निम्न प्रकार छपता चला आ रहा है:—

"इस भाष्य की भाषा को पण्डितों ने बनाई, और संस्कृत को भी उन्होंने शोधा है"

इन शब्दों से स्पष्ट स्थिति का बोध नहीं होता। कई प्रकार की आशंकायें उठती हैं।

यह पत्र महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के शिष्य ब्रह्मचारी रामानन्द जी (जो पीछे संन्यासाश्रममें आकर रामानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुये) के हाथ का लिखा हुआ है। यह रामानन्द ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द के साथ लेखक के रूप में कई वर्षों तक रहे। अर्थात् मृत्यु समय में भी यह श्री महाराज की उपचर्या में थे। इन का लेख बहुत अच्छा था। यह अलीगढ़ जिले में अतरौली के पास के रहने वाले थे। ऋषि-भक्त महाशय मामराज जी के द्वारा हमें असली पत्र प्राप्त हुआ है, जो आर्यसमाज खतौली जि० मुजफ्फरनगर (यू० पी०) के सभासद हैं और जिन्होंने अनेक वर्षों तक घोर परिश्रम और कष्ट उठाकर भारतके भिन्न भिन्न नगरों और स्थानों से ऋषिके पत्र और विज्ञापनादि संगृहीत किये थे, और जो लाहौर में रामलाल कपूर ट्रष्ट के द्वारा प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कौलर द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द के "पत्र और विज्ञापन" नामक पुस्तक में छपे हुये हैं। ब्रह्मचारी रामानन्द का वह पत्र हम छाप रहें हैं। हम तो इस पत्र का फोटो या ब्लाक छापना चाहते थे पर इस समय ऐसा प्रबन्ध होना कठिन था। अतः हम उस पत्रको छाप रहे हैं—

यह पत्र ऋषि दयानन्दके निधनके लगभग दो मास पीछे का लिखा हुआ है जो पं० श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, मन्त्री परोपकारिणी सभा के नाम उनके पूछने पर लिखा गया था। पत्र निम्न प्रकार है।

श्रीयुत् माननीयाऽनेकशुभगुणगणालंकृतब्रह्मकर्म—समर्थ श्रीमत्पण्डितवर्य मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्याऽभिधेयेष्वितो रामानन्दब्रह्मचारिणोऽनेकधा प्रणतयः समुल्लसन्तुतराम् इति।

भगवन्! आप ने जो मुझे श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाऽऽचार्यवर्य्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी कृत ऋग्वेदादिभाष्य के विषयों की परीक्षा करके

श्रीमती परोपकारिणी सभा में निवेदन करने के लिए (एक सारांश) बनानेको प्रेरणाकी थी। सो आप की आज्ञानुसार उसको बना कर आप की सेवा में समर्पित करता हूँ. अवलोकन कीजियेगा।

इत्यलं प्रशंसनीयबुद्धिमद्वर्य्येषु
मिति पौषकृष्णा ३ रवि सम्वत् १९४०
शुभचिन्तक–रामानन्द सरस्वती

ऋग्वेद भाष्य

श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्री १०८ मद् दयानन्द सरस्वती जी कृत ऋग्वेद भाष्य की व्यवस्था निम्नलिखित परिमाणे जानना चाहियेः—

अर्थात्

ऋग्वेद का भाष्य १ मण्डल के आरम्भ से ७ मण्डल के ६७ वें सूक्तके २ मन्त्र तक रचा गया।

१ मण्डल के ८६ सूक्त के ५ मन्त्र तक मुद्रित हो चुका अर्थात् ५० + ५१ अंक तक।

१ मण्डलके ८६ सूक्तके ६ मन्त्र से ९१ सूक्तके ३ मन्त्र तक की शुद्धप्रति छपने में; शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।

१ मण्डल के ९१ सूक्त के ४ मन्त्र से १ मण्डल के ११४ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति लिखी हुई छपाने योग्य है।

१ मण्डल के ११४ वें सूक्त के ६ मन्त्र से १ मण्डल के १२४ सूक्त के १२ मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है।

१ मण्डल के······मन्त्र से १ मण्डल के······सूक्त की समाप्ति पर्यन्त तक की भाषा पण्डित ज्वालादत्त जी इस भाषा बनाने के लिये वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।

१ मण्डल के ११४ वें सूक्त से ७ मण्डल के ६२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य अशुद्ध संस्कृत में बना हुआ है। १ मण्डल के ६१ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र से १ मण्डल के ११४ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र के ऋग्वेद भाष्य के रद्दी पत्रे हैं। अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।

यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण हो गया अर्थात् ४० वें अध्यायकी समाप्ति पर्यन्त रचा। १५ वें अध्या के ११ वें मन्त्र तक का भाष्य मुद्रित हो चुका है। अर्थात् ५० और ५१ अंक तक है।

१५ वें अध्याय के १२ वें मन्त्र से लेकर २१ वें मन्त्र तककी शुद्ध प्रति छपनेमें शेष मुन्शी समर्थदान जी; के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है। १५ वें अध्याय के २२ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ मन्त्र तक छपने योग्य शुद्ध प्रति लिखी हुई है।

२३ अध्याय के ५० वें मन्त्र की भाषा बनी हुई है शुद्ध प्रति में लिखने योग्य है।

२३ अध्याय के ५१ वें मन्त्र से ६५ मन्त्र तक अर्थात् अध्याय की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी।

२४ वें अध्याय······से अध्याय······तक भाष्य भाषा बनाने के लिये पण्डित ज्वाला दत्त जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

२७ वें अध्याय के आरम्भ से ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त का अशुद्ध संस्कृत भाष्य बना हुआ है अर्थात् विना शुधी संस्कृत है।

१३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र तक रद्दी पत्रे हैं अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।

—०—

इस पत्र से स्पष्ट विदित हो जाता है किः—

१. ऋग्वेद भाष्य के प्रथम मण्डल के १२४ वें सूक्त के १३ वें मन्त्र से लेकर सातवें मण्डल के ६२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक (जहां तक कि ऋग्वेद भाष्य महर्षि द्वारा संस्कृत में बना) की भाषा ऋषि की मृत्यु के पीछे बनाई गई। दूसरे शब्दों में ६७ सूक्त प्रथम मण्डलके, तथा दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छटां, ये पाँच मण्डल पूरे और सातवें, मण्डल के ६२ सूक्त २ मन्त्र तक अर्थात् लगभग ६ मण्डल की भाषा ऋषि की मृत्युके पीछे पण्डितों ने बनाई।

२, इन उपर्युक्त ६ मण्डल की संस्कृत भी उस समय तक शुद्ध नहीं हो पाई थी, इसे भी पं० ज्वालादत्त जी आदि पण्डितोंने ही शुद्ध किया।

३. यजुर्वेद भाष्य में भी २३ वें अध्याय के १५ मन्त्र तथा २३ अध्याय से ४० तक पूरे १७ अध्यायों की भाषा

भी ऋषि की मृत्यु के पश्चात् पण्डितों द्वारा ही बनाई गई।

४. इन उपर्युक्त १७ अध्यायों तथा १५ मन्त्रों की संस्कृत को भी पण्डितों ने शोधा है। अर्थात् विना शुधी संस्कृत थी।

५. सम्पूर्ण यजुर्वेद तथा ऋग्वेद के ७ वें मण्डल के ६२ सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य बन चुका था।

६. भाषा भी पण्डित ज्वालादत्त जी ने बनाई, संस्कृत के शोधने में उनका मुख्य हाथ रहा।

उपर्युक्त सारे लेख से स्पष्ट है कि वेदभाष्य की वह स्थिति नहीं हो सकती जो सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिकादि की है। क्योंकि ऋषि दयानन्द के जीवन काल में ही सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि लगभग सभी छप चुके थे। यहां तक कि कई एक के तो द्वितीय संशोधित संस्करण भी प्रकाशित हो चुके थे। पर आर्य जाति के दुर्भाग्य से वेदभाष्य की यह स्थिति नहीं हो पाई, इसकी क्या स्थिति है यह स्वामी रामानन्द जी के उपर्युक्त पत्र से स्पष्ट विदित हो जाता है।

सारभूत यह है कि ऋग्वेदभाष्य के ९ भागों में से ७ भाग की भाषा भी ऋषि की मृत्युके पश्चात् पण्डितों ने बनाई और संस्कृत को भी पीछे ज्वालादत्त जी आदि पण्डितों ने ऋषि के जीवन काल के पीछे ही शोधा है। इसी प्रकार यजुर्वेद भाष्य के ५ भागों में से आधे २॥ भाग की भाषा ऋषि के जीवन काल के पीछे बनी और संस्कृत को भी ज्वालादत्त जी आदि पण्डितों ने ही शोधा है।

वेदभाष्य के पहिले भागों की भाषा भी पण्डितों ने बनाई और संस्कृत को भी पण्डितों ने शोधा है जैसा कि ऋग्वेदभाष्यके सब भागोंपर सदासे छपता चला आ रहा है।

यह भी ध्यान रहे कि इन्ही पं० ज्वालादत्त जी को परोपकारिणी सभाकी ओर से स्वामी जीके ग्रन्थों में गड़बड़ डालने के कारण ही ५०) रु० दण्ड दिया गया था।

विज्ञ पाठक ऋषि दयानन्द जी का भाष्य पढ़ते समय इस उपर्युक्त सारी परिस्थिति को जान कर ही पढ़ें पढ़ायेंगे तभी उन्हें यथार्थ ज्ञान हो सकता है। जो इस बात पर ध्यान नहीं देंगे उन्हें भाष्य में कहीं कहीं बहुत सन्देह वा कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और निश्चय ही यथार्थ बोध न होगा।

हमारा यह लेख ऋषिभाष्य की यथार्थ स्थिति को आर्य जनता के लिए अवगत कराने में लाभप्रद होगा यह हमें पूर्ण विश्वास है। आशा है विज्ञ महानुभाव इससे अवश्य लाभ उठायेंगे।

संस्कार विधि पर मेरा वक्तव्य

(गतांकसे आगे)

इस प्रकार हमने ऊपर स्पष्ट करदिया है कि ऋषि दयानन्द ने प्रेस कापी पृष्ठ १५ में अपने हाथ से काली स्याहीसे संशोधन और परिवर्धन द्वारा (अयन्त इध्म) मन्त्र से समिदाधान का विधान किया है। और असली कापी में पुंसवन आदि संस्कारों के प्रकरणमें प्रेस कापीकी ३—१९ तक की पृष्ठ संख्या देकर सारा विधान किया है। असली कापी में अन्त तक अनेक स्थलोंमें ऋषि के अपने हाथ के काली पेंसिल के संशोधन वर्तमान हैं। । संस्कार विधिकी द्वितीय वार संशोधित सपूर्ण रफ़ कापी तथा पृष्ठ ४७ तक प्रेस कापी निश्चय ही ऋषि ने जोधपुर के निवास कालमें स्वयं अपने सामने लिखवाई और स्वयं ठीक की। (अयन्त इध्म) यह मन्त्र भी इसमें का है।

इस प्रकार आरम्भकी तीनों शंकायें स्वयं निर्मूल हो जाती हैं। ऋषि दयानन्द ने स्वयं विधान किया, यह सर्वथा निर्विवाद है। रह गई चौथी शंका कि "उसी ने १, २, ३, ४ सख्या भी डाली होगी" यह ठीक है। जिस लेखनीसे (अयन्त इध्म०) मन्त्रके अन्तमें '१' संख्या डाली गई है, उसीने अगली १ सख्याको २, २ को नीचेसे बढ़ाकर ३ और ३की ४ सख्या बनाई है। जब ऋषिने मन्त्र स्वयं बढ़वाया, उसके व अगले मन्त्रोंके अन्तमें अपने हाथ से परिवर्धन किया (पहले ३ मन्त्र थे पीछे ४) तब पहले की १, २, ३ संख्याओं को २, ३, ४ करना आवश्यक ही था। हां यह संशोधन उसी लेखनी और स्याही से उसी लेखकके हाथके हैं। इससे मुख्य धारणामें यत् किञ्चित् भी भेद नहीं आता। चारों शंकाओंका उत्तर समाप्त हुआ।

अब हम श्री उपाध्याय जी की २ सितम्बर ४८ के 'आर्यमित्र'में छपी अन्य शंकाओंपर विचार करते हैं—

(शंका ५) 'तीन ही मन्त्रोंसे एक एक करके समिधायें चढ़ानेका विधान शतपथ ब्राह्मण, कात्यायन सूत्र आदिमें स्पष्ट है। चार मन्त्रोंसे ३ समिधा चढ़ानेका विधान कहीं नहीं। 'समिधाग्निं' इत्यादि तीन मन्त्र यजुर्वेद अध्याय ३ के लगातार १, २, ३ मन्त्र हैं। 'अयन्त इध्म........ वेदमन्त्र भी नहीं। इस मन्त्रसे समिदाधान किसी गृह्यसूत्र में नहीं'।

(समाधान) देखिये पहिले हम 'अयन्त इध्म' मन्त्र से समिदाधानमें प्रमाण उपस्थित करते हैं—

[अ] आश्वलायन गृह्यसूत्र १.१०.१२ में 'इध्ममभिघार्याऽयन्त इध्म आत्मा.........समेधय स्वाहेति' तथा गर्ग नारायणी वृत्तिमें—'तत इध्ममभिघार्य अयन्त इति मन्त्रेणाम्नावादध्यात्' ऐसा लेख है जो इसी मन्त्रसे समिदाधानका विधान करता है। यहाँ सर्वथा यही मन्त्र है।

[इ] भारद्वाज गृह्यसूत्र १.४ में—'......इध्मं त्रेधाभ्यज्य सकृदेवादधात्ययन्त इध्म आत्मा......समेधय स्वाहेति'।

[ई] जैमिनीय गृह्यसूत्र १.३ में—'अथेध्ममादाय स्रुवेणाज्यं गृहीत्वाऽभिघार्याग्नावभ्यादधाति—अयन्त इध्म आत्मा.........समेधय स्वाहेति'।

[उ] संस्कार-पद्धति [आनन्दाश्रम संस्करण] पृ० १९ में—'दक्षिणहस्तेनेध्ममादाय अयन्त इध्म आत्मा.........समेधय स्वाहेति.........प्रागग्रमादधाति। जातवेदसेऽग्नय इदं'।

इन तीन प्रमाणोंमें भी स्पष्ट ही इसी 'अयन्त इध्म०' मन्त्रसे अग्निमें समिधा छोड़नेका विधान किया गया है। मन्त्रमें स्वल्प पाठभेद है। सो यह भ्रान्ति दूर हो जाती है कि 'अयन्त इध्म०' मन्त्रसे समिदाधानका विधान किसी गृह्यसूत्रमें नहीं।

हाँ! शतपथ ब्राह्मण में नहीं। कात्यायन गृह्यसूत्र कोई प्राप्य नहीं, हाँ पारस्कर गृह्यसूत्र तो है। शतपथ ब्राह्मण में अयन्त इध्म०' से न हुआ तो कौनसी हानि हो गई। वहाँ तो विधान भी दर्शपौर्णमासमें श्रौत यज्ञविषयक है, न कि स्मार्तयज्ञविषयक। रही चार मन्त्रोंसे तीन समिधाओं को अग्निमें चढ़ानेकी बात, सो शतपथ ब्राह्मण २.१.४.५ में तो

'आश्वत्थीस्तिस्रः समिधो घृतेनान्वज्य समिद्वतीभिर्घृतवतीभिऋग्भिरादधाति.........' ऐसा लिखा है अर्थात् पीपल की तीन समिधायें घृतसिंचन कर समिद्वती घृतवती ऋचाओं से आधान करे। यहां हम अपनी ओर से कुछ न कहकर कात्यायन श्रौत सूत्र ४-१९९-२०१ [पृष्ठ २७६-२७७ चौखम्बा संस्करण] तथा उसके भाष्यकार कर्क का मत देते हैं—

१. 'आश्वत्थीस्तिस्रः समिधो घृताक्ता आदधाति समिधाग्निमिति प्रत्यृचम्'। १९९।

२. 'उप त्वेति जपति। २००।' अत्र कर्कभाष्यम्—'त्रिभिरादधात्येकं जपतीति हि श्रूयते। २००।'

३. 'द्वितीयं वाध्वर्युः'। २०१।

अत्र कर्कभाष्यम्—'द्वितीयं वा जपति। येनैवं श्रूयते। समिद्वतीभिर्घृतवतीभिरभ्यादधातीति समिच्छब्दवतीभिर्घृतशब्दवतीभिश्चेति। द्वितीया च समिच्छब्दवती, अतो द्वितीयामेव जपतीति। पाठक्रमस्तु लिङ्गेन बाध्यते। अध्वर्युग्रहणं च पाठक्रमव्युदासार्थम्। अतश्च समिदाधानान्ते जपः। अपरे तु जप याजमानमिच्छन्ति। मन्त्राश्चाकर्तृकरणा इति सूत्रितत्वात् तेनाध्वर्युरित्युच्यते।'

यहाँ मूल कात्यायन श्रौत सूत्रमें चार मन्त्रोंसे तीन समिधा डाली जानेका स्पष्ट विधान है। एक मन्त्रका जप करना है। सो एक पक्ष में 'सुसमिद्धाय शोचिषे०' का जप करना है, दूसरे पक्षमें चौथे [य० ३.४] का जप करना है। शेष तीन मन्त्रोंसे तीन आहुतियाँ देनी हैं। अर्थात् 'समिधाग्निं' और सुसमिद्धाय' दोनों मन्त्र पहली समिधा डालनेमें बोले जायेंगे। तीसरे मन्त्रसे दूसरी समिधा, चौथे से तीसरी। उपर्युक्त कर्कभाष्यमें तो सर्वथा स्पष्ट लिखा है। अन्यत्रभी दो दो मन्त्रोंसे एक क्रियाका विधान अनेक कर्माङ्गों में मिलता है। यह पांचवां समाधान हुआ।

[शंका ६] 'फिर ऋषि को क्या पड़ी थी कि प्राचीन सूत्रकारोंके वेदके अविरोधी भाव को छोड़कर हस्तक्षेप करते।'

(समाधान) ऋषिने देखा कि सूत्रकारों ने 'अयन्त इध्म०' इस मन्त्रसे भी समिदाधान किया है, उन्होंने अपने पूर्व विचारको बदल लिया और तीनके स्थानमें चार मन्त्रों द्वारा तीन समिधाओंका विधान कर दिया। यही प्राचीन सूत्रकारोंका वेदका अविरोधी मत है।

[शंका ७]—'अभी किसी विद्वान् ने यह बतानेकी कृपा नहीं की कि ऋषि दयानन्द ने अमुक पद्धति का अनुकरण किया है और उसमें चार मन्त्रोंसे तीन समिधायें देनेका विधान है। परिवर्तनके लिए विशेष कारण होना चाहिए। अकारण परिवर्तन ऋषि दयानन्दके मन्तव्य और स्वभावके विरुद्ध है।

(समाधान)—ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधिमें पारस्कर, गोभिलीय, आश्वलायन, शौनक आदि गृह्यसूत्रों का एकमें समन्वय किया है। इसीमें उनका ऋषित्व निहित है। इन उपर्युक्त चारों शाखाओं की भिन्न भिन्न पद्धतियों में से किसी एकका अनुकरण करते भी कैसे। संस्कारविधि की यही तो विशेषता है, जिसे बहुत कम सज्जन समझ पाते हैं। चार मन्त्रोंसे तीन समिधाओंका विधान हम ऊपर दर्शा चुके हैं। परिवर्तन के लिए विशेष कारण यही था

12